पांच गधे



रांगेय राघव

पाँच गधे

प्रस्तुत पुस्तक रांगेय राघव की कथाओं का नया संग्रह है. इसका नाम जितना रहस्यमय है (भूमिका पढ़िए) उतना ही इसका विषय भी विचित्र है। इसमें आपको लघुकथा, व्यंग्य, फीचर, रिपोर्ताज, रेडियो-कथा, रेखाचित्र, एडवेन्चर : साहसानुभव, संस्मरण तो मिलेंगे ही, एक ऐसी दीर्घकथा भी मिलेगी, जो गद्य में काव्य का अद्‌भुत उदाहरण है। यद्यपि ये सभी रचनाएं आज के समाज पर गहरा और स्थायी व्यंग्य करती हैं, तथापि इनमें आप व्यंग्य से भी गहरी वेदना पाएंगे, जो आपके हृदय को झकझोर कर रख देगी। भूमिका में लेखक ने गद्य की विधाओं पर जो नया प्रकाश डाला है, उनके आलोक में प्रत्येक रचना आपको इस लेखक के एक नये ही रूप का परिचय देगी। लेखक ने ईसप, बाण तथा अनेक पुराने और नये लेखकों की शैलियों को अपने भीतर आत्मसात् कर लिया है और हिन्दी कथा-साहित्य को एक नया मोड़ दिया है।

पाँच गधे

रांगेय राघव



राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली ६

मूल्य	:	तीन रुपये
प्रथम संस्करण	:	अप्रैल, १६६०
प्रकाशक	:	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	:	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

भूमिका

किताब इख्तिलायिल अखयार में लिखा है कि एक बार येसू क्राइस्ट ने अपने सामने से इबलीस नामक शैतान को पांच गधे हांककर ले जाते देखा तो उसने पूछा, 'यह क्या माल इनपर लादकर लिए जाते हो ?'

शैतान ने कहा, ' मैं इन गधों पर कुछ सामान ले जा रहा हूं और इनके खरीददारों को ढूंढ़ रहा हूं ।'

क्राइस्ट ने पूछा, 'इनपर क्या-क्या माल लदा हुआ है ?'

शैतान ने उत्तर दिया, 'पहले गधे पर अत्याचार लदा है ।'

'भला इसे कौन खरीदेगा ?'

शैतान ने कहा, 'बादशाह लोग ! और दूसरे गधे पर घमंड रखा है ।'

'इसे कौन लेगा ?' क्राइस्ट ने कहा ।

'ऊंचे खान्दानों के लोग ! और तीसरे पर ईर्ष्या है ।'

'इसका ग्राहक कौन है ?'

'विद्वान लोग ! और चौथे पर दुष्टता भरी बेईमानी है ।'

'इसे लेने वाला कौन है ?'

'व्यापारी ! और पांचवें पर कुटिलता भरा छल रखा है ।'

'इसे भी कोई लेगा ?'

शैतान ने कहा, 'स्त्रियां ?'

(अल-दमीरी, हयात अल-हयवान)

यह एक बहुत पुरानी अरबी कहानी है, जिसमें बादशाहों को अत्याचारी, कुलीनों को घमंडी, विद्वानों को ईर्ष्यालु, व्यापारियों को दुष्टता से भरा बेईमान, और स्त्रियों को कुटिलता और छल से पूर्ण, कहा गया है ।

लेकिन कहने का ढंग सांकेतिक और व्यंग्यपूर्ण है। आज के युग में राजा और बादशाह तथा कुलीन तो प्रायः ही समाप्त हो चुके हैं, किन्तु

बादशाह शासक होता है, और कुलीन उसीको कहा जा सकता है जो कि अपने वर्ग को किन्हीं विशेष अधिकारों के कारण जनसाधारण से अलग और ऊंचा समझते हों। आज के युग में पहले वर्ग में राजनीतिक नेता और दूसरे वर्ग में नौकरशाही आती है। विद्वान और व्यापारी तो आज भी हैं और इस प्रकार इन चारों वर्गों में कम-अधिक करके शैतान के माल के गुण अब भी विद्यमान हैं, चाहे उनके बाहरी स्वरूप बदल गए हों।

सबसे अधिक विवादास्पद विषय प्रमाणित होता है, आज के युग में स्त्रियों का। यों तो विवाद पुराना है। अलिफ-लैला के किस्से स्त्री-विरोध से ही प्रारम्भ होता है और अन्त में स्त्री से उनमें समझौता हो जाता है। हिन्दी में किस्सा तोता-मैना है, जिसमें स्त्री और पुरुष का यह पुराना झगड़ा बदस्तूर मिलता है। आज इन्हीं बातों को 'समस्याप्रधान सामाजिक विश्लेषण' कहा जाता है। जब बात शारीरिक भिन्नता पर आती है तब उसे 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' जैसे शिष्ट शब्दों में प्रकट किया जाता है।

वस्तु-सत्य यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों एक-से होते हैं; खासकर आजकल तो लोग कुछ दिन पुरुष बनकर रह सकते हैं, तो कुछ दिन स्त्री बनकर भी दिन निकाल सकते हैं। झगड़ा होता है तब, जब व्यक्ति किसी विशेष परिस्थिति में पड़ जाता है। व्यक्तित्व की विभिन्नता विभिन्न परिस्थितियों और भेदगत आवश्यकताओं में जन्म लेती है और अपना विकास करती है।

हर एक व्यक्तित्व की अपने ही दृष्टिकोण में अपनी एक न्यायसंगति भी होती है। 'पांच गधे' इसीकी साहित्यिक अभिव्यक्ति बनकर मेरे सामने उठी, सो प्रस्तुत है।

साहित्य दो प्रकार का है—एक रंजक जो हल्का है, एक गम्भीर जो भारी है। यह रचना दूसरी श्रेणी की है, यद्यपि इसकी पहुंच सहलता के कारण पहली श्रेणी में भी रखी जा सकती है। आज के युग के इबलीस से जब मेरी मुलाकात हुई तब उसने मुझको अपने गधों के माल का परिचय दिया। मैंने देखा कि उसके माल के रूप बदले हों, खरीददार बदले हों, लेकिन उसके गधे अब भी गधे ही हैं। मैंने उन गधों को युग-युग में देखा और अपने निर्णय को मैंने करीब-करीब ठीक ही पाया। यों मतभेद हो

सकता है, बाल की खाल निकाली जा सकती है, जैसे किताब अल-पुस्ततफ में अहमद अल-इब्शैही ने लिखा ही है कि एक बार अल-मुतवक्किल के सामने एक स्त्री लाई गई जो अपने को स्त्री-पैगंबर कहती थी। 'तुम स्त्री पैगम्बर हो ?' उसने पूछा, वह बोली, 'हां'। उसने कहा, 'तुम मुहम्मद को मानती हो ?' वह बोली, 'हां'। उसने कहा, 'लेकिन मुहम्मद ने कहा है कि मेरे बाद कोई पैगम्बर नहीं होगा ?' वह बोली, 'ठीक है, लेकिन क्या उन्होंने यह भी कहा है कि मेरे बाद कोई स्त्री-पैगम्बर भी नहीं होगी ? उन्होंने देवदूत की मनाही की है, न कि देवदूती की।' आज के युग में यह और भी बड़ी समस्या बन गई है कि जो कल न था, वह आज एक प्रश्न बन गया है।

इन्हीं नये प्रकरणों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए कथा-साहित्य में नये-नये रूप प्रकट किए हैं। जिस तरह तुलसीदास जी कभी भी सुमित्रानन्दन पन्त को अच्छा कवि क्या, कवि ही नहीं मानते, न इंशाअल्ला मानते प्रेम-चन्द को, उसी प्रकार आज के कथारूपों के नये मोड़ पुराने रूपों से कई विभेद खा गए हैं।

स्थायी और अस्थायी साहित्य के भेद विषय पर हो सकते हैं, या अभि-व्यक्ति पर, यह एक गंभीर विषय है। रस की प्राप्ति का साधन मानवरूप के दर्शन में है, या वस्तु में नियोजित आधारों पर, यह भी विवादास्पद है।

पुरानी कहानी घटनाप्रधान थी, तब वह कहानी रही। उसके बाद की कहानी चरित्र-चित्रण प्रधान हुई, तब भी वह कहानी रही। उसके उपरान्त समस्या-प्रधानता ने भी कहानी को कहानी ही बनाकर रखा। वातावरण-प्रधानता में भी कहानी तो कहानी ही बनी रही।

कहानी के और भी रूप हुए। मैक्सिम गोर्की ने स्थायी और अस्थायी साहित्य के भेद को प्रकट करते हुए कहा था कि साहित्य स्थायी हो, पर युग की मांग भी पूरी हो, परन्तु केवल पत्रकारिता ही साहित्य न बन जाए। इसीलिए गोर्की ने साहित्य को रिपोर्ताज दिए, जो विषय में तत्कालीन होते हुए भी अपने भावपक्ष के कारण स्थायी गद्य की एक विधा बने। उसमें भावात्मक निबन्धों की मार्मिकता आई। फिर उन्होंने 'फीचर' लिखे जो कहानी और रिपोर्ताज का सम्मिश्रण बने।

किन्तु अन्ततोगत्वा ये दोनों विधाएं 'कथा' के अन्तर्गत ही आईं, क्योंकि उनमें लेखक के व्यक्तित्व का प्रकटीकरण ही प्रमुख बनकर रहा।

रेखाचित्र को भी 'कथा' के व्यापक क्षेत्र में ही माना गया है। लघु-कथा, दीर्घ कथा, इत्यादि भी इसीके अन्तर्गत हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि आज 'कथा' और 'कहानी' में भेद है। हर कहानी कथा है परन्तु हर कथा कहानी नहीं है। कथा मनुष्य की व्यापक भूमि है, कहानी उसका एक अंग है। युग-विभेद से कथा ने अनेक रूप पकड़े हैं। आज उसके अनेक रूप साहित्य में विद्यमान हैं। कहीं पात्र गौण है, कहीं मुखर। आज कथा वह छोटी इकाई है जिसमें लेखक किसी एक बात को ही अभिव्यक्ति देता है। इस प्रकार कथा में लेखक अब कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, वातावरण, घटना-शृंखला, कथोपकथन इत्यादि को केवल कहानी में ही प्रयुक्त करता है, किन्तु कथा के व्यापक रूप में वह इन सबसे आबद्ध नहीं है, वह इनमें से किसीका भी प्रयोग उतना ही कर सकता है, जितना कि वह अपनी बात को अभिव्यक्ति देने के लिए आवश्यक समझता है। वह पात्र को प्रकट कर सकता है, या अभावात्मक रूप में उसे अप्रस्तुत रखकर उसके कथन द्वारा उसकी अभिव्यंजना कर सकता है। राजस्थानी में 'बात' शब्द का प्रयोग कथा के लिए होता था।[१] इसमें भी यही भावना सम्भवतः विद्यमान नहीं थी, क्योंकि तब 'वार्ता' के रूप में बात का प्रयोग हुआ था, परन्तु अब बात विषय का वह भाग बन गई है, जिसे लेखक सामने लाना चाहता है।

मैंने इसी दृष्टि को सामने रखकर यह संकलन अपने पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। इसमें विभिन्न 'रूप' आपके सामने प्रस्तुत हैं। लगभग सभी रचनाएं समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनको मेरे आलोचकों ने 'नये प्रयोग' की संज्ञा दी है, परन्तु असली आलोचक मेरे पाठक हैं; अतः इनका न्याय-निर्णय मैं उन्हींपर छोड़ता हूं। बस यही कहूंगा कि कुछ भी हो—'रावरो हूं·········'

१. श्री गजराज ओझा के मतानुसार राजस्थानी में बात, प्रसंग और कथा के रूप में तीन शब्द मिलते हैं। 'बात' कहानी के लिए आया है। क्योंकि आज की कहानी एक विशेष प्रकार की हो गई है, मैंने पुरानी कहानी को कथा कहा है।

क्रम

१

बिल और दाना

लघु कथा

एक बार एक खेत में दो चींटियां घूम रही थीं। एक ने कहा, 'बहन, सत्य क्या है ?' दूसरी ने कहा 'सत्य ? बिल और दाना !'

उसी समय एक मधुमक्खी ने सरसों के विशाल, दूर-दूर तक फैले खेत को देखा। क्षितिज तक फूल ही फूल खिले हुए थे। दो आदमी उस खेत में घूम रहे थे। एक ने कहा, 'इन फूलों के बीच में चलते हुए ऐसा लगता है, जैसे हम किसी उपवन में घूम रहे हों।'

दूसरे ने कहा, 'कैसी मादक गंध हवा पर बह रही है।'

मधुमक्खी ने सुना और मुस्कराकर फूल में अपना मुंह लगाया और मन ही मन कहा, 'बेचारे! कितने लाचार हैं ये लोग। सरसों के बीज से तेल निकालना जानते हैं, लेकिन उसके फूलों का रस लेना नहीं जानते।'

यह सुनकर चींटियां बिल में आ गईं।

यह बात आई-गई हो गई। फागुन ने हवा में मस्ती भरी, चैत ने कोयल के स्वर गुंजाए और कुछ दिन बाद सैकड़ों मक्खियों ने असंख्य फूलों का शहद ला-लाकर पीपल के तने पर एक बड़ा-सा छत्ता लगा दिया। दोनों चींटियों का भी आना-जाना वहीं से था। वे भी सब देखती रहीं।

फसल काटकर वे ही दोनों आदमी उसी पीपल के नीचे बैठे और ऊपर जो नजर पड़ी तो एक ने कहा 'अरे! क्या जोर का छत्ता लगाया है मक्खियों ने! खूब मिलकर काम करती हैं ये। अपने खाने का इन्तज़ाम भी खूब करती हैं।'

दूसरे ने कहा, 'आज रात को कंबल देना मुझे थोड़ी देर को। मैं इसको

तोड़ूंगा।'

मक्खियों ने सुना नहीं; क्योंकि वे अपने निर्माण में व्यस्त थीं। अंधेरा हो गया और मक्खियां छत्ते पर जा बैठीं। दूसरा आदमी कंबल ओढ़े चढ़ गया और उसने मक्खियों को झाड़ू से हटाकर अंधेरे में छत्ता तोड़ लिया और उतर आया।

मक्खियों पर वज्र टूट पड़ा, लेकिन बेचारी क्या करतीं। वे यह भी नहीं पहचान पाईं कि उनकी उगलन को कौन ले गया। उन्होंने कंबल जैसी किसी चीज़ को काटा, वह दर्द को महसूस ही नहीं करती थी। आखिर करती भी क्यों?

यों एक सपना उजड़ गया।

दोनों आदमियों ने शहद बोतलों में भरकर रख लिया। उधर मनुष्य का कल्याण करने को एक संत निकले हुए थे। वे दही और शहद ही खाते थे। वे उपदेश यही देते थे कि सब कुछ दान कर दो; अपने पास कुछ मत रखो। संस्कृति का नया युग प्रारम्भ करो।

जब यह उपदेश देते हुए वे गांव आए, तो इन दोनों पर उनकी अहिंसक वाणी का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने उन्हें शहद भेंट कर दिया, जिसे देखकर संत की आंखें चमकने लगीं।

दुपहर हो गई तो उसी पीपल की छाया में संत बैठ गए और अपनी रोटी में उसी शहद को लगाकर खाने लगे।

दो मक्खियां डाल पर बैठी थीं। अब काम कुछ था नहीं। बहुत दिनों की मेहनत बेकार जा चुकी थी। जहां कभी छत्ता था, वहां अब आग से जले काठ की कलौंच-सी बाकी थी।

अचानक एक की निगाह रोटी पर पड़ी, तो उसने कहा, 'बहन मक्खी गुनगुन! देख तो ज़रा। लोग तो कहते हैं यह संत है, सबसे कहता है, सब कुछ दान करो, तप करो, पर यह तो शायद शहद खा रहा है, जो हमने इतनी मेहनत से इकट्ठा किया था। चल, इसे काटकर इसके ढोंग की सज़ा तो दे आएं।'

दूसरी मक्खी ने कहा, 'नहीं बहन तुनतुन, अब पापी और झूठे के हाथ में जाकर वह शहद नहीं रहा। उसमें फूलों की मिठास नहीं रही। मनुष्य के

स्वार्थ ने उसे हमारे लिए विष बना दिया है, हम शहद फूलों की प्यालियों से समेटती हैं, ऐसी-वैसी जगह से नहीं।'

एक कुत्ता वहां बैठा-बैठा संत की रोटी को देख रहा था। संत तो पेट-पूजा के नये प्रयोग में व्यस्त थे; वे तो नहीं सुन पाए, मगर कुत्ते ने सुन लिया। सोचने लगा कि आखिर यह क्या चीज है जिसके पीछे संत पागल हो गए। लालच आया तो कुत्ता खड़ा होकर पूंछ हिलाने लगा। संत ठहरे दयालु ! एक टुकड़ा उसकी ओर भी फेंका, शहद लगी रोटी देख कुत्ता झपटा, किन्तु शीघ्र ही उसने उगल दिया उसे। शहद उसे बहुत बुरा लगा। और उसने सोचा—आखिर आदमी ने इतनी बुरी चीज की चोरी क्यों की ? इसे खाने से तो उबकाई आती है।

जब कुत्ते को चैन न पड़ा तो उसने धीरे से कुनमुनाकर कहा, 'बहन तुनतुन ! क्या फूलों में इतनी उबकाई लाने वाली चीज होती है, जो तुम बेवकूफों की तरह इकट्ठा किया करती हो, और क्या इसीकी रक्षा करने के लिए तुम अपना विषैला डंक सबको चुभाती फिरती हो ?'

गुनगुन मक्खी हंसी और बोली, 'अरे भैया कुत्ते ! तू इसकी असलियत क्या जाने ! यह शहद कैसी चीज है, इसे तू क्या समझे ! तू जिस आदमी की जूठन खाता है, वही आदमी हमारी इस उगलन को खाने के लिए चोरी करता है और संत-महात्मा इस थूक को खाकर दानी और त्यागी होने का ढोंग रचते हैं। तू तो सिर्फ रोटी चबा ! तू शहद को क्या समझ सकता है।'

कुत्ता मन ही मन आदमी के बारे में चक्कर में पड़ गया और सोचने लगा—लोग कहते हैं कि मैं जूठा खाता हूं, तो क्या यह आदमी भी जूठन खाता है ?

थोड़ी देर में संत खा-पी चुके और उपदेश सुनने वाले इकट्ठे हो गए। तब संत ने कहा, 'अपना सब कुछ दान कर दो। मक्खियों की तरह सुन्दरता से सत्य निकालना सीखो, जैसे वे फूलों से शहद निकालती हैं। और मनुष्य के समाज को मिठास दो ! और कुत्ते की तरह निर्लोभी रहो, जो मिठास होने पर भी शहद नहीं चाहता !'

इस प्रवचन को सुनकर मक्खियां मनुष्य का गुणगान करती हुई उड़

गईं और कुत्ता पहले से भी अधिक मनुष्य का भक्त हो गया। तब दूसरी चींटी ने पहली चींटी से कहा, 'बचकर चल ! संत को इतना समय नहीं कि हमें देखकर बचकर निकले। सारा सत्य यहीं धरा रह जाएगा।'

उस दिन से लोक में यह प्रचलित हो गया कि मक्खियां इसीलिए बनी हैं कि आदमी के लिए शहद इकट्ठा किया करें और कुत्ता इसलिए पैदा हुआ है कि आदमी की सेवा किया करे। चोरी और दासता से मनुष्य का अहं संतुष्ट होकर नये-नये सन्तों और पैगम्बरों को धरती पर भेजने लगा और मनुष्य, जिसने कि आदर्शों के मूल में केवल अपना स्वार्थ सिद्ध किया था, किसी भी प्रकार संतुष्ट नहीं हो सका। उसे दुःखी देखकर एक बार मक्खियों ने निर्णय किया कि अब की बार जब वह चोरी करने आए तो उसे रोक दिया जाए, क्योंकि चोरी को ही न्यायसंगत समझने के कारण वह घबरा रहा है, और कुत्ते ने सोचा कि मेरी दासता ने इस आदमी को अहंकार में डाल दिया है, अतः मुझे इसका यह दंभ भी मिटाना चाहिए। चुनांचे जब आदमी छत्ता तोड़ने गया तो मक्खियों ने काट लिया और कुत्ते ने बगावत कर दी। दोनों का ध्येय था कि अब कोई इनमें दार्शनिक संत बनकर नई मूर्खता प्रकट न करे। किन्तु हुआ यह कि एक नया व्यक्ति खड़ा हुआ और उसने मक्खियों को उड़वा दिया और कुत्ते की पिटाई कराई और कहा, 'जिसमें डंक हो, उसे निकाल दो क्योंकि वह मिठास के पास जाने से रोकता है, और जो बग़ावत करे उसे दंड दो, क्योंकि बगावत से नियम बिगड़ता है। जो कुछ है, हमारे लिए ही तो है।'

मक्खी और कुत्ता बड़े उदास हो गए। उन्होंने आसमान के सितारे से शिकायत की। सितारा बहुत बुड्ढा था। उसने हंसकर कहा, 'बच्चो ! यह आदमी बहुत बड़ा मूर्ख है। जब यह इस धरती पर ही नहीं था, मैं तो तब से ही इस धरती को जानता हूं। पर यह अब समझता है कि सब कुछ इसीके लिए है।'

'कब से देख रहे हो तुम ? क्या हम इसीके लिए बने हैं ?' कुत्ते और मक्खी ने पूछा।

'बहुत दिनों से।' सितारे ने हंसकर कहा। 'तुम इसके लिए नहीं बने, तुम बने हो मेरे सामने। और मैं तुम्हें हमेशा देखा करूंगा।'

इसी समय बुड्ढा सितारा हिल उठा और आकाश में फिसलकर गिर पड़ा। आकाश में आग-सी लगी और फिर सब शान्त हो गया। मक्खी और कुत्ते ने एक दूसरे की ओर देखा और कहा, 'सितारा झूठ कहता था। आदमी ठीक कहता है।' और दोनों फिर उसीकी सेवा में लग गए। तब दूसरी चींटी ने पहली चींटी से कहा, 'सत्य समझो।'

पहली चींटी ने मुस्कराकर कहा, 'समझ गई। जो तूने उस दिन कहा था, वही अन्तिम सत्य है—बिल और दाना।'

उसके बाद कोई कुछ नहीं बोला।

२

कुत्ते की दुम और शैतान : नये टेकनीक्स

व्यंग्य-कथा

फरवरी

इलाहाबाद के एक पत्र में छपा

उपसंहार

'कहने के लिए जो कुछ कहा जाए, उसपर विश्वास कर लेना ही तो काफी नहीं।' दोनों आंखें उठाते हुए उसने कहा।

चंचल समझा नहीं। उसने फिर कहा, 'पर तुम मेरी बात मानतीं क्यों नहीं?'

'मैं यही जानती हूं कि लेखक अपने बारे में जो कुछ कहता है, वही सब उसके बारे में काफी नहीं होता। लोग उसके बारे में क्या कहते हैं, मैं इसीपर अधिक ध्यान देती हूं।' सुषमा ने चाय में चीनी मिलाते हुए कहा।

चंचल ने सुनकर भी नहीं सुना।

बाहर धूप सुनहली पड़ गई थी। चंचल ने सामने की ओर इशारा करके कहा 'झील पर कुहरा नहीं है, घूमने चलती हो?'

'ज़रूर'

चंचल ने जर्किन ठीक की, बालों पर कंघा फेरा, और जूते साफ किए। सुषमा ने ओवर कोट पहनकर एक बार आदमकद शीशे में झांककर देखा। और दोनों पहाड़ से उतरने लगे।

ऊबड़-खाबड़ ढोकों पर संभलते हुए वे नीचे उतरकर सड़क पर आ गए। सड़क अभी तक बस स्टैण्ड के पास गीली थी, झील के फर्न मटमैले-से दिखाई दे रहे थे। मैले और फटे कपड़े पहने पहाड़ी कुली जिन्दगी की भया-

नक कशमकश में दुहरे होकर पीठ पर बोझ ढोते पहाड़ पर बंगलों की ओर चढ़ रहे थे।

सुषमा ने पल को भी इधर दृष्टि नहीं टिकाई। कहा, 'वह देखो बादल उधर मुड़ गया, चलो रायडिंग करेंगे।'

चंचल ने सिगरेट सुलगा ली और झील के किनारे की रेलिंग थामकर कहा, 'आज फिर?'

सुषमा झुंझला उठी। बोली, 'क्यों? आज क्या कोई मुसीबत है, या आपके दिमाग में कोई प्लाट आ रहा है?'

चंचल ने सिगरेट का धुंआ एक बार आकाश की ओर छोड़ा और कहा, 'तुम जा सकती हो। जब तक मैं तुम्हारे साथ रहूंगा, तब तक मेरी कला मेरा साथ न देगी। मैं आज तक एक विश्वास के बल पर जीता रहा हूं सुषमा! मुझे अपनी रिक्ति से बढ़कर प्यारा कुछ नहीं है।'

सुषमा ने देखा। आंखों में एक तिक्त व्यंग्य-सा छलका और चला गया। क्षण भर वह उसे घूरती रही।

फिर चंचल ने देखा, सुषमा घोड़े पर दौड़ी जा रही थी, साईस पीछे-पीछे दौड़ रहा था। फ्लैट के मोड़ तक चंचल की आंखें उधर ही लगी रहीं, फिर वह पेड़ों की ओट में ओझल हो गई।

चंचल ने झील के पानी में कंकड़ फेंका, लहरियां दूर-दूर तक फैल गई।

अंधकार घिरता आ रहा था। झील के किनारे की बस्तियां जगमगा रही थीं। पहाड़ों पर बसे नैनीताल के घरों की खिड़कियां बिजली की रोशनी से चमकने लगी थीं। झीनी ठंड अब तीखी हो चली थी। चंचल ने देखा, अब वह अकेला रह गया था।

—सरदार जसवन्तसिंह, बम्बई

२

मार्च,

पटना के एक पत्र में छपा

यों तो आजकल कई कहानियां लिखी जाती हैं, किन्तु सरदार जसवन्तसिंह की 'कुत्ते की दुम और शैतान' पढ़कर बड़ी राहत मिली। कहानी का अन्त बहुत जानदार हुआ है। मेरी आंखों में अभी तक चंचल खड़ा

है। झाल को वह देख रहा है; यहां तक कि लगता है जैसे झील एक बहुत बड़ी आंख है, जो चंचल को देख रही है। दोनों में हमें बड़ा अजीब-सा अपनापन दिखाई देता है।

सुषमा का चरित्र पारे की तरह का ढुलमुल नहीं है। उसमें स्त्री जाति के उस वर्ग का वर्णन है जो पुरुष की किसी विशेष प्रसिद्धि के पीछे दौड़ती है और अपनी यश की प्यास में यह नहीं देखती कि यश कमाना सहज नहीं होता। उसके लिए त्याग और साधना की आवश्यकता पड़ती है।

हिन्दी में देखा जाए तो प्रेमचन्द के बाद कोई कहानीकार नहीं हुआ। प्रमचन्द में एक चीज़ थी जो अब नहीं मिलती। वह है एक सुव्यवस्थित कथानक का कहानी में आवश्यक रूप से बना रहना। मैं बड़े सन्तोष के साथ स्वीकार करूंगा कि सरदार के कथानक में एक व्यवस्था है और आश्चर्य यह है कि नितान्त साधारण होते हुए भी घटना अपनी छाप छोड़ जाती है।

यथार्थ के दृष्टिकोण से हम यही कह सकते हैं कि आज जिस सीमित दायरे में मनुष्य को बांधा जा रहा है, वह युग-युग का साहित्य नहीं बनने देगा। राजनीति ही सब कुछ नहीं हो सकती। मैं मानता हूं कि सरदार की कहानी की तुलना मैं समरसेट माम की किसी कहानी से नहीं कर सकता। परन्तु जहां तक वातावरणपरक (ऐटमास्फेरिक) कौशल है, उसमें लार्ड डन्सनी से कम ताकत नहीं है।

कला प्रचार ही तो नहीं है। वह तो मनुष्य की इकाइयों को जुटाती है, पाठक अपने बल से ही रचना से साधारणीकरण करें तो ही हम विकास के पथ पर हैं। हमारा युग लघुता का युग है और विराट सृष्टि के क्षेत्र में इस लघुता का जो नया सामञ्जस्य है वह एक ओर सुषमा की उपेक्षा में है, तो दूसरी ओर चंचल की अतृप्ति में, जिसमें उपेक्षा निरासक्ति की सीमा तक पहुंच गई है।

सरदार जसवन्तसिंह ने इधर कई कहानियां लिखी हैं और यदि वे शिल्प की ओर और थोड़ा ध्यान देते तो अवश्य उपन्यासकार लायनफ्यूक-वेंगर का-सा सजीव चित्रण करते। अमेरिका में जो सार्त्र का अस्तित्ववाद अपना प्रभाव डालते-डालते रह गया, उसका कारण यही था कि यौन विकृतियां वहां कभी उतनी नहीं फैल सकी हैं, मेरा तात्पर्य सांस्कृतिक उपचेतन

के स्तर से है, जितनी फ्रांस में, जिसका बाह्य आपको पियरे लुई की 'किंग पासोल्स एडवेंचर्स' में मिल जाएगा। हिन्दी में भी कृतित्व होगा और वह दिन दूर नहीं है जब अच्छी कहानियां लिखी जाएंगी। उस समय लोग यह देखेंगे कि सरदार की कहानी उन कहानियों में से थी जिसने नये रास्ते की तरफ मोड़ लिया।

—वामन पाण्डुरंग चरमरकर, पूना

३

कलकत्ता के एक पत्र में छपा

कल ही एक महिला ने मेरे पास एक पत्र भेजा था। महत्वपूर्ण समझकर इसे आपके पास भेज रहा हूं, क्योंकि इसमें एक साधारण पाठिका का स्वर है। हमारे दिग्गज लेखक अपने गुरुत्व में बैठे हैं, साधारण पाठक-पठिकाओं का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। सरदार की कहानी पर ध्यान देना आवश्यक है। पत्र यों है, मैं सन्दर्भ वाक्यों को उद्धृत करता हूं—

'अभी सरदार जसवन्त सिंह की 'कुत्ते की दुम और शैतान' कहानी पढ़ी।

'कहानी क्या है, जी हुआ कि पत्रिका को जला दूं। बारह आने और आधे घन्टे का खून था। अच्छा होता मैं इसे खरीदकर पढ़ने की बजाय सिनेमा देख आती।

'यह आधुनिक युग ! और उसमें एक स्त्री को सारी स्त्रियों का प्रतिनिधि बनाकर इस तरह 'पेन्ट' करना। पता नहीं, किस तरह इस 'पेट्रिआर्किकल सोसायटी' के 'ट्रेडीशन्स' को 'रिप्रजेन्ट' करती है यह ! जैसे स्त्री का कोई चिन्तन ही नहीं, कोई अस्तित्व ही नहीं ! लेखक इसपर जरा भी जोर नहीं देता कि चंचल में पौरुष ही नहीं ! घोड़े पर चढ़ते डरता है, बस सिगरेटें फूंकता है। और काम क्या करता है कि झील को देखता रहता है।

'मैं तो कहूंगी कि शायद वह सरदार जसवन्तसिंह जैसे तृतीय श्रेणी के लेखक का प्रतिबिम्ब है, जो शायद ही कभी कुछ पढ़ने लायक लिखते हों। वैसे मैं तो नाम देखकर ही उनकी कोई चीज नहीं पढ़ती, क्योंकि वह पढ़ने योग्य होगी भी क्या !

'पर तुर्रा देखिए कि लेखक किस तरह चंचल से सहानुभूति और पक्ष-

पात दिखाता है। वह चाहता है कि सुषमा सिर्फ वही ज्यों का त्यों मान ले कि जो चंचल अपने बारे में कहता है, वह ठीक है। क्यों माने वह? आजकल भी क्या मान जाने की विवशता कायम रह सकती है? गस्ताव फ्लाबेअर, डिकेन्स और दोस्तोएवस्की को पढ़ने वाले बिना तर्क के कभी भी कैसे स्वीकार कर लेंगे कि आज की कहानी का आयाम पहले से भी छोटा हो गया है। सरदार की कहानी की इनसे तुलना करने पर ही कला का दायित्व प्रकट होता है।'

यों तो पत्र और भी हैं, पर इत्यलम्।

—जगभूषण मतवाला, नागपुर

४

बम्बई के एक पत्र में छपा

सरदार जसवन्तसिंह प्रगतिशील लेखक कहलाते हैं; लेकिन प्रगति यदि 'भाभीवाद' और 'प्रियावाद' है तो वह कैसी प्रगति है, यह हमारी समझ में नहीं आता।

द्रोब्रोल्युव्स्की और बेलिन्सकी के युग में जो कला का रूप था वह प्लेखेनाफ के युग में बदल चुका था। यहां मैं साफ कर दूं कि लेनिन ने जो प्लेखेनाफ के विषय में लिखा है, मैं उससे पूरी तरह सहमत हूं, भले ही मुझे मार्क्स का ऐंलिग्स को लिखा हुआ वह पत्र याद है जिसमें उसने कहा है कि कला का एक स्थायी मूल्य भी होता है।

हाल में माओत्सेतुङ्ग ने कला और रूप के बारे में जो लेख लिखा है, उससे वह भ्रम भी दूर हो जाता है जो ल्यूकस को हुआ था। ल्यूकस की वर्गचेतना ने वही किया जो बुर्जुआ देशों में लाइसैन्को के विरुद्ध हुआ है। काडवेल ने इस सुपरमैन थियरी की जैसी काट की है वह 'सन्तवादियों' की हल्की चप्पलों को युग के सर्वहारा के भारी बूटों के सामने नहीं ठहरने देगी।

तो सरदार की कहानी इस दृष्टि से देखने पर भले ही बाह्य रूप से इब्सेनियन प्रतीत हो किन्तु मैं उसे हास्य की एक विकृति मात्र कहूंगा। क्योंकि यदि आप कहानी के अन्तिम अक्षर से आरम्भ तक पलट कर लिखते जाएं, तो आपको 'प्रयोगवाद' का नया स्थिर रूप मिल जाएगा।

मैंने, कुछ दिन हुए, राष्ट्रीय जागरण का जो रूप देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के इन्द्रदेव और भूतनाथ के संघर्ष में दिखाया था, उसी-से स्पष्ट हो जाना चाहिए था कि नई कहानी का रूप क्या होना है। मैं बहुत दिन से कहता हूं कि हमें प्रेमचन्द की विरासत चाहिए, वही हमारे आन्दोलन का रूप बढ़ाएगी। यहां मैं आपको बता दूं कि कला में वस्तु-विषय की समानता से प्रायः सार्वकालिक और सार्वजनीन रूप से हमारी करोड़-करोड़ मजदूर-किसान जनता को एक जैसा रूप मिलता है। मुझे जो चीज बहुत पसन्द है वह यह कि प्रेमचन्द और गोर्की की मूछें बिल्कुल एक-सी ही लगती हैं। महामानव निराला यदि मूंछ रखते और जरा सौम्य आकृति से फोटो खिंचवाते, तो शायद वे भी इतने ही प्रभावशाली लगते। वैसे उनका व्यक्तित्व वे ही लोग जानते हैं जिन्होंने उनके पास रहकर देखा है कि वे कितने जोर की चपत लगाते हैं। पंजा लड़ाने में तो साहित्य-क्षेत्र में उनका कोई मुकाबला ही क्या करेगा। वे ढुलमुल, स्त्रियों की तरह बनने वाले, सरकारी नौकर जो कि ऊर्ध्व चेतन की आड़ में एक हाथ में काम-शास्त्र और दूसरे हाथ में दर्शनशास्त्र लिए फिरते हैं, वे यह सब क्या कर सकते हैं?

मुझे इसपर याद आया कि मेरे एक मित्र हैं जो देखते भी हैं और नहीं भी देखते, और जब नहीं देखते तब देखते हैं और देखते समय नहीं देखते। किन्तु समय आ गया है कि अब यदि उद्जन बमों का साम्राज्य-वादियों को इतना घमण्ड है तो वे समझ लें कि जनशक्तियों के पास भी काफी बम हैं, जो इन शोषकों को दूर से ही खत्म कर सकते हैं।

और हमारी भारतीय जनता, विशेषकर हमारे हिन्दी क्षेत्र की, यह पुकार-पुकार कर कहना चाहती है कि कांग्रेस को वह वोट देती है तो इसका यह मतलब नहीं कि वह प्रगतिशील ताकतों की तरफ नहीं है। वह है इधर ही, भले ही आज वह कुछ हद तक प्रतिक्रियावादियों की असलियत खोल देने को उन्हें समय दे रही है। केरल का सबक काफी है कि वह भार-तीय च्यांगकाईशेकों का तख्ता हिला डाले। वही बताता है कि रूसी साहित्य इसलिए नहीं कि उसकी आलोचना की जाए। हमें तो उससे कुछ सीखना है।

सरदार की कहानी में मुझे यह तार मिला। किन्तु फिर भी उनका मित्र होने के नाते मैं कहूंगा कि यशपाल की यौन प्रवृत्ति (मेरा मतलब उनकी साहित्य की प्रवृति से है) अभी उनमें बाकी है। उसे दूर होना है। कला जनता में पलती है, जिसे स्तालिन ने प्रकट किया था। यह और बात है कि ख्रुश्चेव और अन्य सोवियत नेताओं ने इसके बारे में बूर्ज्वा संस्कारों के कारण गड़बड़ पैदा की है। इसका इलिया एहरेनबुर्ग ने स्पष्ट उत्तर दिया भी है कि संस्कार नाम की मनुष्य में कोई चीज नहीं होती, केवल समाज-संसर्ग होता है। और क्रान्ति के लिए आवश्यक है कि हम अपने दिलों को टटोलें, प्रतिक्रियावादियों के भेजों को टटोलें। सरदार की कहानी उसी ओर इंगित करती है।

—रणछोड़ दास, तुलसीदास के आंगन की कुटी, लखनऊ

५

अप्रैल

पूना के एक पत्र में छपा

यूरोप का सांस्कृतिक ह्रास हमारे सामने यह प्रश्न लाकर खड़ा करता है कि व्यक्ति का विकास किस प्रकार हो। वह सर्वनाशी दानव जो यान्त्रिकता में व्यक्तित्व को घोंटकर एकदम सारे विकास को वनौकस यूथों की आदिम बर्बरता की ओर लौटाकर ले जाना चाहता है, जो दमन, आतंक और विद्रूप की सहायता से व्यक्ति की लघुता को ही उसकी स्थायी चेतना बनाकर खरल में डालकर घोंटते रहना चाहता है, वह केवल सरकारी मोल बिके चेतनाहीन लेखकों या उन केन्द्रच्युत रेखाओं जैसे मानसों को सन्तोष दे सकता है, जो हर प्रकार से इस बर्बरता को सहायता देकर मूल प्रश्न को दूर रखना चाहता है। हम लोग, जो कि गुट नहीं बनाते, यह कह सकते हैं कि सारी साहित्यिक चेतना हमारे पास है, और वह आगे ले जाने वाली है। जो इसे नहीं मानता वह गलत है और उसी दृष्टिकोण को मानने वाला है जो संघ का रूप धारण करके नये आयामों को रोकता है।

सरदार जसवन्तसिंह की 'कुत्ते की दुम और शैतान' को लेकर जो गलत प्रचार किए जा रहे हैं वे सत्य से कितनी दूर हैं इसे पढ़कर आश्चर्य होता है। इलियट जैसे भोज और हिन्दी में उसके गंगू की बात मैं क्या कहूं,

परन्तु अखाड़िये लोग उस कहानी को जो रूप दे रहे हैं वह वास्तव में विचित्र है। कहानी अपने आप में पूर्ण है, उसका अपना त्रिकोणात्मक आयतन है, जो भले ही कोर्स ही की किताबें पढ़ाने वाले या सरकारी इनामों पर पलने वाले, या गुटबन्दी करके सरकारी पदों पर किसी तरह घुस बैठने-वाले लोगों को पसन्द न आए, लेकिन उसमें तीखा व्यंग्य है।

कला नया जीवन चाहती है। सरदार की पुरानी बोतल में नई शराब है। साधारणीकरण का अब पुराना राग अलापना व्यर्थ है। लेखक ही ऐसी मुश्किल क्यों उठाए। नये युग में पाठक को ही अब लेखक की कृति से साधारणीकरण करना होगा, अन्यथा वही भाव, वही चित्रण लेकर लेखक क्या बंधा बैठा रहेगा ? पाठक को भी अपना विकास करना पड़ेगा। सर-दार की कहानी में यद्यपि इसका पूर्ण निर्वाह नहीं है, फिर भी अपनी सारी कमजोरियों के बावजूद, वह ध्यान देने लायक है। उसे लोग चाहे गिराना चाहें, परन्तु हम, जो गुटबन्दी को स्वीकार नहीं करते, इस झगड़े से दूर रह-कर ही साहित्य की सत्परम्परा का निर्वाह करना चाहते हैं।

—राजेश्वर गुरुनाथ तवक्कले, इलाहाबाद

६

जबलपुर के एक पत्र में छपा

अभी आपका पत्र मिला। सरदार की कहानी पढ़ी। उस समय मेरे साथ वहां अन्य कई प्रतिष्ठित साहित्यिक भी थे। कहानी की चर्चा चल पड़ी।

श्री क्षेमराज हिन्दी के गण्यमान्य ऋषि हैं। उनके विषय में गांधी जी के एक परम सुहृद् ने कहा भी है कि जब-जब क्षेमराज जी की कहानी पढ़ी तब-तब उन्हें यही लगा कि ताल्सताय की आत्मा बोल रही है। तो क्षेम-राज जी से इस कहानी पर बातचीत हुई। उन्होंने पढ़ी तो नहीं थी, पर उनकी राय का साहित्य में मान होना चाहिए। मैंने उसी समय उसे लिख लिया। क्योंकि यह राय क्या, दर्शनशास्त्र का एक टुकड़ा है। आपको भेजता हूं—

'कहानी क्यों लिखी गई ? क्योंकि शायद कहने को कुछ था नहीं। होता तो वह लिखी गई न होती। कलाकार अभिव्यक्ति कब करता है ?

जब उसका व्यक्तित्व युद्ध चाहता है। युद्ध ? किससे ? औरों से ? नहीं। और यानी आप ! आपका यहां तात्पर्य किससे होगा ? उस शांति से जो मनुष्य में होते हुए भी नहीं है। सरदार जसवन्तसिंह ने कहानी लिखी है, और जो मैं कहूं नहीं लिखी है, तो ? लिखते सब हैं, मगर लिखता कौन है ? सरदार नहीं लिखते। मैं नहीं लिखता। कला अभिव्यक्ति नहीं दुराव है। किससे दुराव ? गति से। तो गति ही जब फल हो तो कोई करे भी क्या।'

मेरी अपनी राय यह है कि कहानी ठीक ही है। और अच्छी होती तो मैं उसे और श्रेष्ठ कहता। वैसे ठीक है, प्रेमचन्द के बाद के अकाल के नये पौधों में उसका एक विशेष स्थान है।

—परशुराम त्रिपाठी, बनारस

७

बनारस के एक पत्र में छपा

आपके पत्र में सरदार जसवन्तसिंह की 'कुत्ते की दुम और शैतान' छपी। मैंने यही प्रयत्न किया कि उसे भी उस सारे साहित्य जैसा समझूं जो नित्य कूड़े-कर्कट के रूप में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में छप रहा है। परंतु उसकी इतनी चर्चा हुई कि मुझे बाध्य होकर पढ़ना पड़ा। परन्तु पढ़कर इतनी निराशा हुई जितनी शायद बिना पढ़े हुए साहित्य के प्रति भी नहीं है।

क्यों लिखते हैं लोग ? कोई उद्देश्य है सामने ? जनता को मिलता है कुछ ? लेखक का व्यक्तित्व किन साधनाओं में से निकला है जो वह कुन्दन दे सकेगा ? आरामकुर्सियों पर बैठकर कहानियां लिखना फैशन है तो जनता से सम्पर्क ही कहां है ?

मैं कुत्सित समाजशास्त्रियों की बात नहीं करूंगा, क्योंकि वे हर चीज़ को रूस का चश्मा लगाकर देखते हैं। इतना ही कहूंगा कि उस कहानी में नयापन है, मगर उसमें गहराई की कमी है, और इसीलिए उसमें चेष्टा नहीं है जो हमें आगे ले जाए, उदात्त बना सके। और मैं क्या कहूं।

—श्रीधरसिंह पाण्डेय, आगरा

८

दिल्ली के एक पत्र में छपा

किसी कहानी की कितनी प्रशंसा की जाए यह एक विचारणीय प्रश्न है।

हिन्दी में यह रोग हो गया है कि लोग या तो साहित्य पढ़ते नहीं, या पढ़ते हैं तो फिर अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग छेड़ देते हैं। मैं उनमें नहीं; क्योंकि मुझे राग से ज़्यादा ढपली प्यारी है।

अभी आचार्य भगवतप्रसाद शर्मा से वर्तमान साहित्य पर बातें हुई थीं। वे उसी समय राष्ट्रपति से मिलकर आए थे। उन्होंने हंसकर कहा, 'गुरुदेव कहा करते थे कि नये लेखकों को उनकी राह पर स्वतन्त्र छोड़ना चाहिए, क्योंकि बुद्धि किसी एक पीढ़ी की नहीं होती।—गुरुदेव महा मानव थे, और उनकी बात आज क्या सदैव लागू होगी! सरदार जसवन्तसिंह में प्रतिभा है, तो वे अवश्य बढ़ेंगे, उन्हें कौन रोक सकता है।'

परन्तु मैं यही कहूंगा कि कहानी कठिन कला की वस्तु है। किसी भी रचना को इतना तूल देना ठीक नहीं। आजकल हिन्दी में डाक्टरों की भरमार है, और जो चाहे कुछ भी लिखने लगता है। हमें मर्यादा से काम लेना चाहिए। अभी एक सज्जन का लेख पढ़ा कि कहानी बहुत रद्दी है, मगर मैं ऐसा नहीं कहूंगा। विद्वेष की दृष्टि से नीचे गिराना ही ध्येय हो तो सरदार ही क्या कालिदास को भी गिराया जा सकता है।

कहानी मैंने सरसरी निगाह से पढ़ ली है, शास्त्रीय दृष्टि से नहीं। उस दृष्टि से पढ़कर उसके बारे में फिर लिखूंगा। आपका पत्र जिस लगन से साहित्य की सेवा कर रहा है, उसका अभिनन्दन करता हूं, मेरी ओर से सरदार जसवन्तसिंह बधाई स्वीकार करें।

—डा० रघुनन्दनसिंह, पटना

पुनश्च—इस कहानी में सर्वोदय विचारधारा का जो प्रभाव मिल रहा है वह मुझे हिन्दी में एक नये मोड़ की तरफ ले जा रहा है।

मेरा विचार हो रहा है कि नई कहानी पर मैं एक निबन्ध-माला लिखूं और उसमें विभिन्न विचारधाराओं का सांगोपांग विवेचन करूं। हम सब शायद एक ही लक्ष्य की ओर खिंच रहे हों। हमें भरतमुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के काव्यरूपों का अध्ययन करके उनका पाश्चात्य चिन्तन से तुलनात्मक अध्ययन करना है। आप लिखें।

—डा० र० सिं०

९

जून

इलाहाबाद के उसी पत्र में छपा

सम्पादकीय

हमारे पत्र में इधर जसवन्तसिंह की जो 'कुत्ते की दुम और शैतान' कहानी छपी थी उसके सम्बन्ध में हमें काफी गण्यमान लेखकों की सम्मतियां प्राप्त हुईं। वे सब हमने ज्यों की त्यों छाप भी दी थीं।

हमारा सिद्धान्त यह है कि हम हर लेखक की विचार-स्वतन्त्रता का सम्मान करते हैं और यही हमारे जीवन-दर्शन का मूलभूत आधार है। किसी कहानी की इतनी चर्चा हो, और वह भी जो हमारे पत्र में छपी हो, यह स्पष्ट प्रकट करता है कि हमारा पत्र निरन्तर कहानी को आगे ले जा रहा है। शीघ्र ही हिन्दी में भी तालस्ताय, गोर्की, मोपासां और बाल्ज़ाक जैसे लेखकों का उदय होगा। हमारे एक मित्र का तो यहां तक कहना है कि सरदार में हरिश्चन्द्र की चुटीली चोट है, तो मायकोवस्की की कसक। सरदार सिनेमा-क्षेत्र में भी खूब लिखते हैं। अभी हाल में उनका एक कहानी-संग्रह उबेज्क भाषा में छपना शुरू हुआ है, इससे हिन्दी का नाम बढ़ेगा।

सरदार साहब बहुत लिखते हैं। और इसीलिए मेरी अपनी राय है कि वे कुछ ढ़ीले पड़ जाते हैं। उनकी यह कहानी अच्छी बन पड़ी है। वैसे कमियां इसमें भी हैं; पर मैं कहूंगा अब वे शायद ही ऐसी कहानी लिख पाएं। शायद ही क्यों, बल्कि यही कहना ठीक होगा कि नहीं ही लिख पाएंगे। वे वैयक्तिक समस्याओं में समाज के संघर्षों को भूलते जा रहे हैं और इससे उनको 'मुक्ति' या 'मोक्ष' भले ही मिल जाएं, किन्तु कला का निश्चय ही ह्रास हो जाएगा।

१०

जुलाई

इलाहाबाद के उसी पत्र में छपा

सम्पादकीय

गत अंक छप चुका तब सरदार जसवन्तसिंह का पत्र आया। उसे नीचे

दे रहे हैं। आशा है इससे पाठकों को नयी रोशनी मिलेगी और आलोचकों को भी।

प्रिय भाई

जनवरी में आपका एक पत्र कहानी के लिए आया था। मैं उस समय अपनी फिल्म के एक जरूरी काम से लोणावाला जा रहा था। मेरे क्लर्क उस दिन आए नहीं थे, इसलिए मैं अपनी श्रीमती जी से कह गया था कि क्लर्क से कहकर मेज पर रखी कहानी आपको भिजवा दें।

दोपहर के करीब बारह बजे मेरे क्लर्क जब मेरे घर आए तो श्रीमती जी ने उन्हें कहानी भेजने की बात बताई। दुर्भाग्य से उन्होंने मेरी एक अधूरी कहानी आपको भेज दी। परन्तु वह कहानी भी काफी प्रभावोत्पादक रही।

मेरे पास कई पत्र आए हैं जिनमें कई युवकों ने प्रतिज्ञा की है कि जब तक वे प्रसिद्ध नहीं हो जाएंगे तब तक विवाह या कोर्टशिप भी नहीं करेंगे। मश्क जी की राय से मैंने इस कहानी का ध्वनिनाटक रेडियो में भेजा, वह स्वीकृत हो गया। प्रकाशक महोदय ने कोर्स में लगवाने के लिए एक संक्षिप्त संस्करण भी मुझसे तैयार करवाया है।

मैं कह सकता हूं यह कहानी विश्व-साहित्य में रखी जा सकती है। हिन्दी में आलोचक अच्छे पढ़े-लिखे लोग नहीं, वर्ना गुलेरी जी की तरह मुझे यही कहानी अमर करने को काफी थी। हां, मैं बड़ा आभारी होऊंगा, यदि मेरी उस अधूरी कहानी का शेषांश भी छाप दें। शेषांश साथ में नत्थी है।

भवदीय

—सरदार जसवन्तसिंह

शेषांश

उसका जी किया वह फूट-फूट कर रो उठे। अब उसका सहारा ही कौन था? क्या यही था स्त्री का प्रेम? उसके मन में आ रहा था कि वह कमरे में जाकर अपनी लिखी हुई कापियों को फाड़-फूड़ कर फेंक दे।

धीरे-धीरे चारों तरफ सन्नाटा छा गया। रात का एकाकी विरही पक्षी पुकार उठा। आवाज़ चंचल के रोम-रोम में बिंध गई। उसे लगा, आसमान नीले पहलवान की तरह पेड़ों का काला जांघिया पहने झील में उतर आया था। हवा लंगड़ाती हुई सन्नाटे की बैसाखियों पर चल रही थी।

आलीशान इमारत में रहनेवाले रईस की तरह मुफलिस-दिल चांद निकल आया था।

दूर कहीं घन्टे बजे···एक···दो···तीन ! पांवों की चाप सुनकर उसने मुड़कर देखा। कौन ? सुषमा ! घण्टे बज रहे थे···ग्यारह···बारह···! कलाकार स्नेह और सौन्दर्य की भुजाओं में सिसक उठा।

११

अगस्त

किताब मन्दिर प्रकाशन के अपने पत्र में छपा

हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों के सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक

किताब मन्दिर प्रकाशन

शाखा : बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, पटना, जबलपुर, इन्दौर, मैसूर, अजमेर, दिल्ली, इलाहाबाद, जयपुर की नयी भेंट।

हिन्दी के चोटी के कलाकार, जसवन्तसिंह का नया कहानी-संग्रह 'कुत्ते की दुम और शैतान' तथा अन्य कहानियां।

यह प्रचार का युग है अतः हम कुछ न कहकर हिन्दी के गण्यमान्य लेखकों की रायें उद्धृत करते हैं, जिनसे पाठकों को ज्ञात होगा कि शायद ही एक कहानी लिखकर किसी लेखक को इतना यश मिला हो—

''कुत्ते की दुम और शैतान' पढ़कर बड़ी राहत मिली। कहानी का अन्त बहुत ही जानदार हुआ है।···मैं बड़े सन्तोष के साथ स्वीकार करूंगा कि सरदार के कथानक में एक व्यवस्था है।···जहां तक वातावरणपरक कौशल है, उसमें लार्ड डन्सनी से कम ताकत नहीं है। वह दिन दूर नहीं है जब···लोग यह देखेंगे कि सरदार की कहानी उन कहानियों में से थी जिसने नये रास्ते की तरफ मोड़ लिया।'

——वामन पाण्डुरंग चरमरकर, पूना। यशस्वी आलोचक, दिग्गज विद्वान। मराठी और हिन्दी पर समान अधिकार से राय देने की शक्ति रखने वाले हिन्दी के शीर्षस्थ विचारकों में से एक।

'सरदार की कहानी पर ध्यान देना आवश्यक है।'

——जगभूषण मतवाला, नागपुर। प्रसिद्ध उदीयमान कहानीकार जिनमें प्रेमचन्द और चौसर की सम्मिलित प्रतिभा है। इन्हें पुरानी पीढ़ी का नये

कलेवर में विशेषांक भी कहा जा सकता है।

एक अप्रसिद्ध साधारण पाठिका लिखती है—और हमारे प्रकाशन ने सदैव लोकमत को बड़ा महत्व दिया है, इंगलैंड-अमेरिका में तो सुव्यवस्थित प्रकाशन संस्थाएं ऐसा करती ही हैं।……

'गस्ताव फ्लाबेअर, डिकेन्स और दोस्तोएवस्की को पढ़ने वाले लोग कभी भी बिना तर्क के कैसे स्वीकार कर लेंगे कि आज की कहानी का आयाम पहले से भी छोटा हो गया है। सरदार की कहानी की इससे तुलना करने पर ही कला का दायित्व प्रकट होता है।'

मार्क्सवादी आलोचना के कर्णधार, हिन्दी की प्रखर खड्ग प्रतिभा, श्रीरणछोड़दास, लखनऊ कहते हैं—

'क्रान्ति के लिए आवश्यक है कि हम अपने दिलों को न टटोलें, प्रतिक्रियावादियों के भेजे टटोलें। सरदार की कहानी उसी ओर इंगित करती है।

'और—

'कुत्ते की दुम और शैतान को लेकर जो गलत प्रचार किए जा रहे हैं, वे सत्य से कितनी दूर हैं इसे पढ़कर आश्चर्य होता है।…कहानी अपने आप में पूर्ण है, उसका अपना त्रिकोणात्मक आयतन है।……उसमें तीखा व्यंग है…सरदार की पुरानी बोतल में नई शराब है। उसे लोग गिराना चाहें… परन्तु हम…साहित्य का सत् परम्परा का निर्वाह करना चाहते हैं।'

——राजेश्वर गुरुनाथ तवक्कले, इलाहाबाद। नई समीक्षा की नींव रखने वाले मनस्वी गद्य लेखक, जिनकी कलम में जादू है या गजब की छड़ी!

'सरदार नहीं लिखते। मैं नहीं लिखता।'

——श्री क्षेमराज, हिन्दी के गण्यमान्य ऋषि। ताल्सताय की आत्मा के बिम्ब। परिचय की आपको आवश्यकता नहीं।

'प्रेमचन्द के बाद के अकाल के नये पौधों में उसका विशेष स्थान है।'

——परशुराम त्रिपाठी, बनारस। नई कलम के सिद्धहस्त लेखक।

'मुझे बाध्य होकर पढ़ना पड़ा।…इस कहानी में नयापन है…और मैं क्या कहूं?'

——श्रीधरसिंह पांडेय, आगरा। नये ढंग से सोचते हैं, लिखते हैं। बात में तथ्य हो इसपर जान देते हैं।

'सरदार जसवन्तसिंह में प्रतिभा है, तो वे अवश्य बढ़ेंगे, उन्हें कौन रोक सकता है।'

—आचार्य भगवतप्रसाद शर्मा। हिन्दी के भीष्म। इनको कौन नहीं जानता! गुरुदेव ने इनकी प्रतिभा को स्वीकार किया था।

'विद्वेष की दृष्टि से नीचे गिराना ही ध्येय हो तो सरदार ही क्या, कालिदास को भी नीचे गिराया जा सकता है।···मेरी ओर से सरदार जसवन्तसिंह बधाई स्वीकार करें।'

—डा० रघुनन्दनसिंह, पटना। शोध-क्षेत्र में कोलम्बस।

जो इस संग्रह को नहीं पढ़ता—खरीदकर—(क्योंकि हमें हिन्दी में यह राष्ट्रीय पैमाने पर आन्दोलन करना है कि निजी पुस्तकालय बनाना भी सत्साहित्य के सृजन के बराबर है) वह विश्व साहित्य की प्रगति के साथ नहीं बढ़ सकता। आज ही आर्डर बुक कराइए···

पृष्ठ-संख्या १९२, मूल्य छः रुपये और पचास नये पैसे।

१२

अक्तूबर

दिल्ली की एक अंगरेजी पत्रिका में छपा

If I were to name something mentionable in modern Hindi Literature, I, without the least delay, will put before the western readers, the remarkable and unique short story of Sardar Jaswant Singh—"Kutte Ki Dum Aur Shaitan". Here you find one whole tradition that······

—S.R. J. Siene.

अनुवाद: यदि मुझसे पूछा जाए कि वर्तमान हिंदी साहित्य में उल्लेखनीय कौन-सी रचना है, तो मैं अविलम्ब पश्चिम देशीय पाठक के सामने सरदार जसवन्तसिंह की 'कुत्ते की दुम और शैतान' नामक जबर्दस्त और अपने ढंग की एक ही कहानी रखूंगा। यहां आप एक पूरी परम्परा पाएंगे जो······

—एस० आर० जे० सीने

१३

(नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रैल, मई, जून तक कहीं कुछ नहीं छपा।)

जुलाई में काशी के एक पत्र में तीन पुस्तकों की आलोचना प्रकाशित हुई। उनमें महत्वपूर्ण बातें ये थीं, जिन्हें यहां उद्धृत किया जाता है—

'नये लेखकों में सरदार जसवन्त सिंह का भी कहानी के क्षेत्र में उल्लेख किया जा सकता है।'—हिन्दी साहित्य का विकास, लेखक-आचार्य भगवतप्रसाद शर्मा और डॉ० रघुनन्दनसिंह। पृ० ३९८, फुटनोट नम्बर ३

'कहानियों में सरदार जसवन्तसिंह की 'कुत्ते की दुम और शैतान' उल्लेखनीय है, जिसकी एस० आर० जे० सीने जैसे हिन्दी के प्रेमी किसी फ्रेंच साहित्यकार तक ने प्रशंसा की है।'—हिंदी की कहानी : नये आयाम और प्रमाएं, लेखक-राजेश्वर गुरुनाथ तवक्कले, पृ० ४८१

'नये साहित्य में सरदार जसवन्तसिंह की कविता 'कुत्ते की दुम और शैतान' काव्य में नई ओर पग बढ़ाती है।'—नया साहित्य : नयी समीक्षा, लेखक-रामदुलारे विजयवर्गीय। प्राध्यापक···। पृ० सं० ८७२।

३
सिंहावलोकन
फीचर

जब भी बम्बई जाता हूं, समुद्र-तीर पर अवश्य बैठता हूं। दूर-दूर जल की उथल-पुथल, तीर पर उगी हरियाली और डूबते सूरज को देखना मुझे बहुत प्रिय है।

उस दिन भी मैं दादर में शिवाजी पार्क के समुद्र-तीर की बालू पर बैठा सोच रहा था। कितने ही स्त्री-पुरुष वहां घूम रहे थे, बैठे थे। परन्तु मुझे नारियल कटवाकर पानी पीते हुए वे चार-पांच बच्चे ही अच्छे लग रहे थे। कुछ ही देर में वे बालू में खेलने लगे और तब मैंने देखा वे रेत के घरौंदे बनाने में लग गए।

यों मेरी आस्था ने सदैव मुझे बताया है कि सब कुछ निरन्तर बदलता जा रहा है और बदलता ही रहेगा। परन्तु इतना-सा सत्य ही मैं कभी भी नहीं भूल सका हूं। लोग कहते हैं कि भारतीय चिन्तन मूलतः अभावात्मक है और एक न एक दिन वह दबा ही लेता है। परन्तु मैंने इसे कभी नहीं माना।

मुझे निरन्तर यही लग रहा है कि जीवन में मैंने भले ही साहित्य-क्षेत्र में कुछ भी अच्छा न लिखा हो; कोई यश, धन, पद न कमाया हो, किंतु मेरे भीतर पहले से भी मीठी रागिनी बजती जा रही है। वही रागिनी मुझे समुद्र की अथाह लहरों में भी सुनाई देती है, इसीलिए तो मैं बैठा सुनता हूं। मुझे समुद्र-तीर पर लगता है कि राजनीति, समाज, साहित्य और अपनेपन से घिरा हुआ मेरा व्यक्तित्व अभी और भी अधिक विशाल हो सकता है। भले ही वे किसी और तक पहुंच सकें या नहीं।

ध्यान टूट गया। बालकों की किलकारी ने मुझे क्षणभर आकर्षित किया, और तब मेरी आंखें ठहर गईं।

मेरे सामने एक तरुण खड़ा था। उसकी आंखों में एक अजीब मुस्कराहट थी। मैंने उसे देखा। उसीके पास दो स्त्रियां आकर खड़ी हो गई थीं। और आश्चर्य तो मुझे तब हुआ जब मैंने उन दोनों को भी अपनी ओर देखकर मुस्कराते पाया।

संकोच से मैंने आंखें झुका लीं।

तीनों मेरे सामने बैठ गए। मेरा एकान्त इस प्रकार नष्ट हो गया।

'आपने मुझे पहचाना?' एक स्त्री ने प्रगल्भ स्वर से पूछा, मानो उसे पूर्ण विश्वास था कि मैं उसे पहचान ही लूंगा।

'मुझे?' दूसरी ने कहा।

'और मैं?' पुरुष ने पूछा।

'जी···जी···', मैंने अटकते हुए कहा, 'पता नहीं चलता कब मुलाकात हुई है। यों दिमागी तौर पर काफी कमजोर हूं। क्योंकि सैकड़ों से मुलाकात हुई है। और बुरा न मानें तो कहूं कि अभी तक मेरे जीवन पर किसीने ऐसी छाप नहीं छोड़ी कि सदा के लिए वह मेरा निर्माण कर गया हो। मुझे ऐसा लगता है कि मेरी चेतना एक बालक की भांति मेरी निरन्तर धसकती बालू जैसी कल्पना में स्वप्नों के घरौंदे बनाती चली जा रही है।'

हठात् वे तीनों हंस पड़े। विक्षुब्ध नयनों से देखा मैंने। उनके नेत्रों में वही समुद्र तो था मेरे इधर-उधर उमड़ रहा था—व्यक्तित्व का अतलान्त संवेदन—किन्तु मैं जिसका छोर भी अभी तक नहीं पकड़ सका हूं।

'आपने नहीं पहचाना? मैं लवंग हूं।'

'लवंग! शायद प्रोफेसर आप्टे की······'

'नहीं, मैं स्वर्गीय राजेन्द्र जी की स्त्री हूं और विधवा हूं।'

'क्षमा कीजिए, इतनी अप्रिय बात मैंने आपको याद दिलाई।'

'याद आया अब?'

'नहीं।'

'अरे मैं हूं भगवतीप्रसाद। ये लीला हैं।'

'कृतज्ञ हुआ। मैं रांगेय राघव हूं। हिन्दी का एक लेखक। आप लोगों

ने कैसे कष्ट……''

'तो क्या आपने नहीं ही पहचाना हमें ?'

'नाम तो कुछ पहचाने-से लगते हैं।'

'सोलह वर्ष पहले आपने 'घरौंदे' लिखा था न ?' भगवती ने जरा तीखी आंखों से देखते हुए कहा। 'तब मिले थे हम लोग।'

'याद आया,' मैंने कहा, 'मित्र ! घटनावश हम लोग मिले अवश्य थे, किन्तु आपका व्यक्तित्व आपका है और था भी। मैंने, सच कहता हूं, कभी भी विधाता के अहं की अनुभूति नहीं पाई है।'

'तो क्या आपको हमसे कुछ भी अपनत्व नहीं लगता ?'

'अपनत्व स्थिरता है मित्र ! मैंने 'घरौंदे' को जन्म दिया था, मुझे यहीं विश्वास नहीं होता। इन अतलान्त लहरों को देखकर जब मैं अपने अस्तित्व की परख करता हूं तब मेरे सामने दायित्व एक उपालम्भ बनकर आता है।'

'वह प्रगति का स्वप्न क्या केवल स्वप्न था ?' हठात् भगवती ने कहा। उसी समय दो और व्यक्ति आ गए।

'वीरेश्वर !' लीला ने अचरज-सा करते कहा, 'तुम भी आ गए ?'

'और मैं भी हूं।' कहते हुए दूसरा भी बैठ गया। 'कामेश्वर को तो सब भूल ही जाना चाहते हैं।'

वह मुस्कराया। मैंने कहा, 'प्रगति ! वह कहां जा सकती है ? आपसे जब मैं मिला था तब मुझे उस नई आयु में जीवन का थोडा-सा अनुभव था। उस समय, घड़े के भीतर रखे दीपक के चारों तरफ जैसे पतंगा हर ओर उजाला ही उजाला देखते हुए चक्कर काटता है वैसे ही मैं भी अपनी परिधि के भीतर दौड़ लगा रहा था। लेकिन घड़ा सब तरफ से बन्द नहीं रहता। पतंगे ने देखा कि एकाएक ऊपर से प्रकाश आ रहा था। चन्द्रमा उठ आया था। वह घड़े के बाहर निकल आया और उसने जीवन के व्यापक अंधकार को देखा। मेरे भाई कामेश्वर !' मैंने मुड़कर कहा, 'तुमने सुख को उपभोग की वस्तु माना था, और मैंने प्रगति को भी एक नियन्त्रित सहज स्वीकृति के भीतर बांधा था। लेकिन वह मुझे आगे नहीं बढ़ा सकी।'

'ठीक है,' वीरेश्वर ने कहा, 'आपकी दृष्टि मुझे कुछ आत्मा के विकास-

रूप पलायन की ओर मुड़ी हुई दिखाई देती है। इससे आपकी आत्मा को भले ही संतोष मिल जाए, लोक का तो कोई कल्याण होने वाला नहीं।'

मैंने उसे देखा। मन किया उत्तर न दूं। वह एक सीमित और क्षुद्र बुद्धि का अधम व्यक्तित्व था जो अपने को अब भी भुलाए रखना चाहता था। किन्तु फिर मैंने अपने ऊपर संयम कर लिया और कहा, 'वीरेश्वर! दस मूर्ख जिस स्थिरता में गति को बांधे रखना चाहते हैं, जिनकी अपनी अभिरुचि एक विशेष दायरे के भीतर सड़ गई है और जो बदबू के इतने आदी हो गए हैं कि उनके भेजे में नई गन्ध नहीं जाती, जिनका व्यक्तित्व इतना मुर्दा हो चुका है कि वे वस्तु के सत्य को नहीं देखना चाहते, वरन् प्रत्येक सत्य को तभी सत्य कहना चाहते हैं जब वह उनके सीमित दायरे में फिट बैठ जाए, वे लोग तो जिस अधकचरेपन में पड़े हैं उसीको पूर्णता कहते हैं। उनमें अपनी व्यक्तिगत हीनत्व की भावना है जिसे वे लोक-कल्याण जैसे भारी शब्द की आड़ में छिपाना चाहते हैं। क्या आप उसे ही लोक का कल्याण कहते हैं? मैं इसपर नहीं जाऊंगा कि लोक-कल्याण की दुहाई देने वाले अपने स्वयं का कितना विकास कर सके हैं। उनकी अहम्मन्यता की बात करना भी मेरे लिए छोटी बात है। लेकिन वीरेश्वर भाई, मैं एक ही सत्य की ओर खिंच रहा हूं, वह है मनुष्य का कल्याण, व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण, दोनों एक दूसरे से सापेक्ष। मेरी कोई भी कृति ऐसी नहीं है जिसने मनुष्य की संवेदनशीलता को उदात्त की ओर अग्रसर न किया हो।'

'अंह!' वीरेश्वर ने कहा, 'रहमान से पूछो। तुमने उसको भी व्यंग्य से काटा था।'

मैं हंसा। कहा, 'वह व्यंग्य नहीं था, सत्य था मित्र! किन्तु लोगों ने यदि उसके उसी पक्ष को देखा जिसमें उसकी मन-सन्तुष्टि होती थी, तो क्या वह मेरा दोष था?'

कामेश्वर चुप बैठा था। उसने अंगड़ाई लेकर कहा, 'चैन नहीं है कहीं भी।'

भगवती ने धीरे से बालू में उंगली से रेखाएं कोरते हुए कहा, 'दोष की बात नहीं है। एक आलोचक ने कहा था कि 'घरौंदे' एक कच्ची चीज़ है।

वह केवल आशा देती है कि इसका लेखक भविष्य में अच्छी चीज देगा।' मुझे अपार लहरों में विद्रूप का हास्य सुनाई दिया। मैंने कहा, 'दोस्त, वह ऐसे आलोचक ने लिखा था जिसकी आदत है कि अपने उपन्यास की प्रसंशा स्वयं भी अपने दूसरे नाम से लिखता है। वह उसका क्षुद्र जीवन है। वह समझता था कि इससे उसकी रचना से लोग उसकी तुलना नहीं करेंगे, किन्तु क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारे कालेज-जीवन के आज ग्यारह वर्ष बीत गए हैं, तुमने अपने जैसे व्यक्तित्व कहीं और भी देखे हैं ?'

लवंग ने एक बार हथेलियों से आंखों को मींड़ लिया और अलसाई आंखों से समुद्र की ओर देखा। बालक फिर कोलाहल करने लगे थे।

'घरौंदा ढह गया।'

'मैंने गिराया है।'

'तूने गिराया है !' फिर रोने की आवाज़ आई।

'मैंने तो नहीं गिराया है। इसने गिराया है। गिराकर हंसता है।'

फिर एक स्वर, 'रोता क्यों है ? खेल में कोई रोता है ?'

वे फिर खेल में लग गए। हम लोग-अब भी चुप बैठे हैं। अपार बालू के कण नीचे बिखरे हैं, करोड़ों सिकन्दर उठाकर ये लहरें किनारों पर पीस-पीस कर फेंका करती हैं, लाखों बूंदें आती हैं, बह जाती हैं। शून्य आकाश की व्यापक आंखें झुककर क्षितिज पर उनींदी हो जाती हैं। समाज की विषमता दुरूह है। हम संघर्ष करते हैं, परन्तु हम हारते नहीं।

वीरेश्वर ने तीखे स्वर से कहा, 'तो आपके पास कोई जीवन-दर्शन नहीं ?'

'जीवन है मित्र। जीवन ही अब सबसे बड़ा दर्शन है। पहले दर्शन में जीवन को फिट किया जाता था, अब जीवन और दर्शन दो अलग इकाइयां नहीं रहीं। अब युद्ध नहीं है, लेकिन युद्ध की वीभत्सता शेष है। अब भी दरिद्रता है, शोषण है, लेकिन मैं यह नहीं सोचता, और तब भी नहीं सोचता था कि दरिद्रता और शोषण महत्वहीन वस्तु हैं। वे बहुत कठोर सत्य हैं। दारुण दुःख हैं। जो भूखा है उसके विवेक का सबसे बड़ा सत्य अन्न है। लेकिन आदमी की रोटी का हल यह नहीं है कि उसका दिमाग पीस दिया जाए। रोटी इसलिए नहीं मांगनी है कि हम किसी दूसरे की रोटी से जलते हैं, हम रोटी चाहते हैं

इसलिए कि रोटी इन्सान के जेहन की जिन्दगी है। उसे कुछ ही लोग क्यों खाएं ? रोटी की आजादी सिर्फ पेट का भरना नहीं है, इन्सान के दिमाग का हर जेलखाने से निकलना है। घरौंदे दिमाग के नये-नये विकास के मनोरंजन का साधन हैं। वे एक नये बुनियाद की सचाई बताते हैं कि प्रारम्भ व्यर्थ नहीं है, वह भी तब जब कि उसकी चेतना मनुष्य के राग से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। लेकिन अभी और भी आगे जाना है। कहां जाकर रुकना है, यह मैं नहीं जानता। मैं श्रम जानता हूं। श्रम मेरे व्यक्तित्व की सार्थकता है। यह व्यक्तित्व जीवन-यापन का दास बनकर कभी नहीं रहा। इसने कभी भी सिद्धान्त समर्पण नहीं किया, इसने कभी कुत्सित का मित्रता की आड़ में भी स्वीकार नहीं किया, इसने अपनी भूलों को स्वीकार किया है, और निराधार बुद्धि को नट की तरह नचाकर कभी पैसा और नाम नहीं कमाया। इसने यश के लिए कभी घृणित के आगे सिर नहीं झुकाया। किन्तु इतना पवित्र यह व्यक्तित्व भी इसलिए पूर्ण नहीं हुआ है, क्योंकि अभी संसार में दुःख है, शोषण है, झूठ है, फरेब है। वह सब मिटाना है। राजनीतिज्ञ और प्रकाशक हैं जो अपने व्यवसाय से विकास के शत्रु हैं। यह सब चेतना के विकास नहीं हैं। इन सबसे घृणा आवश्यक है। पर इनसे भी घृणित वे हैं जो चोगे ओढ़कर बैठते हैं। घरौंदे में मैंने जीवन को इस दृष्टिकोण से पूरा नहीं पकड़ पाया था जो अब मैं देख पाया हूं। सत्य जिसका इतना विशाल है, वह किसीको भी और क्यों विशाल मानेगा ? वह तो इसमें व्याघात डालने वालों को घरौंदों की तरह ठोकर मारकर गिरा देगा। और सच तो यह है कि बालू के कणभर की दीन सत्ता मुझे पसंद है जो समुद्र में भीगकर भी अपना अस्तित्व पंकिल नहीं करती, जिसकी उड़ान हवा के कन्धों पर झकोरे लेती है। पर मुझे अब वह सत्ता इतनी निरीह लगती है जो घरौंदे की तृप्ति में महासागर को ही झुठा देना चाहती है।

लीला के नयनों की थकान लवंग की तृष्णाभरी आंखों में अथाह हाहाकार का मौन बन गई थी। वीरेश्वर की खीझ कामेश्वर की निस्तब्धता में बदलती जा रही थी। और भगवती ? अभी भी मेरे मन के किसी पुराने स्तर पर अपनी आंखें गड़ाए जैसे कह रहा था, 'तो वह मेरा त्याग, जो त्याग नहीं था, तुमने उसे किस पथ का आदि बना दिया था ?'

'हां वही।' मैंने कहा, 'वह त्याग यान्त्रिक मनोवृत्ति की अस्वीकृति थी, जो तब से अब तक मुझमें जीवित है। जिन्होंने मुझे धूमकेतु कहा था वह शायद वैयक्तिक स्नेह भले ही रहा हो, परन्तु उनमें साहित्य के प्रति सत्य की निष्ठा नहीं थी, क्योंकि वे मेरे विकास के साथ चरण नहीं बढ़ा सके। मैंने व्यक्ति के त्याग को त्याग नहीं माना था, पर वह आदि था उस पथ का जिसपर चलकर समाज और व्यक्ति निरन्तर उजाले की ओर जा रहे हैं। वह उजाला एक सहस्रबाहु है जो अब निर्माण करता है। क्रोधी काल का कुठार उसकी उंगली भी नहीं काट सकता क्योंकि आलोक-सत्ता का बाह्याडम्बर भी झूठ नहीं; उसके स्नेह की, उसके ज्ञान की पूर्णता है। वह सृष्टि के आदि से खुलती जा रही है। और खुलती चली जाएगी।

बालक फिर कोलाहल करने लगे। मेरा ध्यान टूट गया। आगन्तुक उठ खड़े हुए। उनकी आंखों में सन्तोष नहीं था। जैसे वे मुझसे प्रसन्न नहीं थे। मेरी आंखों में शायद अन्त तक उनके प्रति एक अपरिचय का ही भाव बना रहा। पर मैं लाचार था। सच कहता हूं, मैं अपने एक भी पात्र को याद नहीं रख पाता। लोग तो ऐसा तक करते हैं कि एक उपन्यास लिख देते हैं और कोर्स में लगवाने को स्वयं ही उसे दूसरे नाम से संक्षिप्त कर देते हैं, और फिर दोनों को बेचा करते हैं। पता नहीं जिसे वह कला के लिए एक बार अभिव्यक्ति की पूर्णता में आवश्यक समझकर प्रकट करते हैं, कैसे स्वयं ही उसे दूसरी बार कुंठित भी कर लेते हैं। निश्चय ही वे अवसरवादी हैं। वे कलाकार ही नहीं हैं।

अनन्त लहरें अब भी गर्जन कर रही हैं। मैं लहरों में प्रकाशकों और लेखकों को बहते हुए देख रहा हूं। किन्तु कला फिर भी समाप्त नहीं होती। बालक फिर किलकारी मारकर हंस उठे हैं। कला यहीं है। कला एक आधार है। उसकी संवेदना मनुष्य के जीवन की पूर्णता है। इसीलिए पूछता हूं कि ये जो वे पांचों लौटे जा रहे हैं, जो कभी मेरे इतने पास थे, आज जो मुझसे इतनी दूर हो गए हैं, क्या मैं ही इसके लिए अपराधी हूं? लेकिन मेरी हर मुलाकात मुझे अकेला ही छोड़ जाती है। मेरा एक क्षण अपने परिचय के लिए भले ही सारी सृष्टि से स्थिरता के रूप को ही देखने का हठ कर लेता हो, पर मेरा बहाव कहीं नहीं रुकना चाहता, वह अपनी कला में तिरोहित.

नहीं है, क्योंकि वह जीवन की भूख है। भूख! वही भूख! और इसीलिए मेरा हर क्षण अन्त में वह छोटा-सा घरौंदा ही है जो अपने सीमित छोटेपन से महान् समुद्र को चुनौती देता है, जिसका अपना अस्तित्व बहुत ही क्षण-भंगुर है, पर उसके तत्वभूत वहीं हैं, जब चाहे मिलाकर, थपथपाकर उसे खड़ा किया जा सकता है। हर महासागर के लिए वह धरती की उठान है, और धरती के हर कण के लिए वह एक चट्टान की आत्मा है। वह अबोध आशाओं का फैलाव है, वह कर्मरत हाथों की जिज्ञासा का चरम फल है, किन्तु वह विराट होते हुए भी बहुत छोटा है, ऐसा छोटा कि लाखों नक्षत्र उसके सिर पर से अपने गुरुत्व को आजमा कर निकल जाते हैं और उसे टस से मस नहीं कर पाते, लेकिन वह किसी भी रुंआसे बालक के हाथ से गिर जाता है। गिरकर फिर कण-कण होकर बिखरकर मानव के हर नये वारिस से कहता है कि आ, अपने पांव पर मुझे थोप और सीख, कल जो तुझे अपना घर बनाना है, उसका प्रारम्भ कर अपने स्वप्न का आधार रख! मैं ही तेरी सत्ता का उतार-चढ़ाव हूं। किन्तु मुझे कभी भी तू शुभ मत कह! मैं महासमुद्रों के खारों में तब भी भीगता हूं जब आकाश में पूरा चांद चढ़-कर आता है······पर मैं कभी भी खारा नहीं होता······क्योंकि हर प्रकाश से उठने वाला ज्वार मुझे भिगोने मात्र नहीं आता, मेरा अन्तर्बहिर रस से शराबोर करने आता है······क्योंकि उधर क्षितिज है, तो इधर मैं हूं······मैं प्रहरी हूं······मैं जीवन और मृत्यु की एकमात्र सत्य हूं······

४

पांच रिपोर्ताज़

शान्ति, मजबूरी, दावेदार, गति का सत्य, दलाल

शान्ति

शान्ति के आन्दोलन विश्व के प्रत्येक देश में अपनी आवाज़ उठाते जा रहे हैं। किन्तु भारत में अभी यह पुकार एक प्रचण्ड कंठ-स्वर नहीं बन सकी है। इसका कारण यही है कि जब तक विभिन्न स्वर समवेत नहीं हो जाते तब तक शान्ति का पूर्ण स्फुरण नहीं होता। खंड-खंड होकर बहने वाली धारा वस्तुतः विद्युत पैदा करने वाली शक्ति नहीं रखती। हमारी राष्ट्रीय परम्परा की सबसे बड़ी चेतना यही है कि हम संसार को फिर नरमेध के लिए अग्रसर देखकर अपनी पूर्ण शक्ति के साथ उसका विरोध करें। अहिंसा की कसौटी अब आई है। मेरे दोस्तो ! तनिक अपने सोने को उस-पर घिसकर देखो और बताओ। देखो, तुम्हारा मुलम्मा कहीं छूट न जाए ! तुम्हें शायद डर है कि तुम्हारा सोना अब पीतल हो चुका है। वह कसौटी पर घिसते ही तुम्हारे असली मोल को बता देगा।

और सच तो यह है कि यह मुलम्मा प्रत्येक पूंजीवादी देश पर है। प्रत्येक देशवाद का पूंजीवाद इस मुलम्मे को अच्छे-अच्छे नाम देता है। जनतन्त्र, जनता का राज्य, व्यक्ति की स्वतन्त्रता; कला और संस्कृति की निस्सीम व्यक्तिगत तृष्णा को वह स्वतन्त्र चिन्तन कहते हुए भी नहीं हिच-किचाता। क्योंकि वह जानता है कि उसके सर पर एक तलवार लटक रही है। वह उस तलवार को पहचानता है। वह है असंख्य जनता के न्याय की चमचमाती पुकार। कल तक वह पुकार जिन पत्थरों के गढ़ों से टकराकर लौट आती थी, आज वे गढ़ ही खंडहर बनकर पड़े हैं। पर सबसे बड़ा

उपहास है कि उन खण्डहरों की बेबसी भी उन्हें सुला रही है और वे उस खण्डहरों के वैभव की रक्षा करना चाहते हैं। रात के अंधेरे से प्यार करने वाले यह क्या जानें कि प्रभात का आलोक क्या है? नई दुनिया एक-एक पल में आगे बढ़ रही है। लेकिन अंधेरे को यहां स्थापित रखने वाले अपना अन्तिम प्रयत्न कर रहे हैं। साम्राज्यवाद अपना रूप बदलकर आया है। पहले वह डकैती करके लूटता था, अब वह दान देकर लूटता है।

लहलहाती फसलों पर उठे हुए हांसिए मनुष्य की भूख मिटाए, तो वह श्रेयष्कर है। अगर वे दूसरे की गर्दन काटने को उद्यत हों तो उनसे बुरी कोई वस्तु नहीं है।

युद्ध की झंकार सुनकर जिनके घर में सोना बरसता है, वे कभी शान्ति चाह सकते हैं? युद्ध से जिनके घर जलते हैं, जिनकी स्त्रियों की अस्मत लूटी जाती है, उनकी आंखों में उतरा हुआ लहू ही युद्ध का मोल बता सकता है।

और मैं आसमान में उड़ते शान्ति फैलाने वाले पक्षियों को प्रत्येक देश से उड़ते हुए देख रहा हूं। उनके मुंह में गेहूं की बाल है। वह इन्सान की रोटी है। सच ही तो, रोटी हमारी शान्ति का आधार है। साम्राज्यवाद की बात जब मैं याद करता हूं तब मुझे उस दानव की कहानी याद आ जाती है जिसे मैं बहुत चाव से बचपन में सुना करता था। जब पण्डित जी कहते थे कि भयानक राक्षस ने उस कोमल बच्ची को एक किले में बन्द कर दिया। बेचारी फूल-सी कोमल बच्ची दिन-रात वहीं पड़ी रहती और देखती कि पक्षी तक उस महल के ऊपर से उड़ने में डरते थे। सांझ होते ही वह राक्षस लोहे के फाटक पर दस्तक देता था और लड़की फाटक खोल देती थी।

यह तो हुई वहां की कहानी जहां तक अमेरिका गुर्रा रहा था, पर च्यांगकाई शेक अकड़ा करता था। आज एक बात क्यों भूल जाऊं कि एक दिन एक लकड़हारे का लड़का कंधे पर कुल्हाड़ी लेकर उस लड़की को छुड़ाने चल दिया।

कितने हंसने की बात है कि एक छोटा-सा लड़का इतने बड़े दाने से लड़ने चल दिया। आखिर उसने कुछ भी नहीं सोचा? पर कहानी कहती

है, वह डरा नहीं। वह किले के दरवाज़े पर पहुंचा ही नहीं, उसने दरवाज़ा खटखटाया, लड़की ने झांककर कहा, 'भाग जाओ ! भाग जाओ, वर्ना वह तुझे आकर मार डालेगा।'

लकड़हारे के बेटे ने कुल्हाड़ी का हाथ फाटक पर जमाकर हंसकर कहा, 'डरो नहीं। वह तो देखने का ही शेर है। तुम रात को उसकी ऊपर की खाल हटाकर देखना। उसमें भीतर एक गधा है, शेर नहीं है।'

चुनांचे लड़की ने देखा तो यह बात सच साबित हुई।

च्यांगकाई शेक तो चला गया। और उसकी ऊपर की खाल हटाते ही साम्राज्यवाद की असली ताकत मालूम हो गई। पर अब भी अमेरिका की खाल ज्यों की त्यों मौजूद है। क्या वह अपनी खाल को उतारने देगा ?

मेरे दोस्तो ! मेरी कहानी साथ-साथ चलती रहे तो ज़रा मेरी बात ठीक चलती रहेगी। अच्छा तो लड़की से दाने ने एक दिन कहा, 'मुझे ऐसा पता चला है कि तेरे पास कोई आता है।'

लड़की ने कहा, 'ऐसा कैसे पता चला ?'

दाने ने कहा, 'मुझसे चमगीदड़ ने कहा था।'

लड़की ने कहा, 'तो वह तुम्हारा पालतू है ?'

दाने ने हंसकर कहा, 'वह मेरे किले की अंधेरी में दिन भर छिपा रहता है, और अंधेरा उतर आने पर फटफटाकर बाहर उड़ जाता है। वह दार्शनिक है।'

लड़की ने अपनी आंखें मिचमिचाकर कहा, 'अब समझी, तो वही तुमसे चुगली करता है ?'

दाने ने कहा, 'चुगली नहीं। उसकी आत्मा जिसे ठीक समझती है, कहती है।'

'आत्मा ?' लड़की ने कहा, 'ठीक बात है, तुम्हारे भी एक आत्मा होगी।'

'हां।' दाने ने कहा।

लड़की मुस्कराई और उसने कहा, 'तुम संसार को क्या समझते हो ?'

दाने ने कहा, 'मैं संसार का सेवक हूं। दुनिया में सब कोई अपना-अपना काम करते हैं। मैं उनमें से किसीकी भी बराबरी नहीं कर पाता। इसलिए भगवान का भजन भी कर लेता हूं। पर लोग मुझे जाने क्यों बगुला भगत

समझते हैं ?'

लड़की ने कहा, 'इस दुनिया में बहुत-से लोग भूखे मर जाते हैं, तुम इस तहखाने में अनाज सड़ा रहे हो। इसे उन्हें क्यों नहीं बांट देते हो ? अपने से सबको भला कहते हो, पर खुद भले नहीं बनते।'

दाने ने कहा, 'आजकल तुम स्थितप्रज्ञ नहीं रही हो। पहले तुम इतनी चपल नहीं थीं।'

लड़की मुस्कराई। उसने कहा, 'तुम्हारे ओठों के बाहर आज यह लाल रंग कैसा लग रहा है ?'

दाने ने झट से मुंह पोंछकर कहा, 'खून नहीं है, यह तो पान की पीक है। भगवान का प्रसाद पाकर मैं पान खा लेता हूं।'

बात खत्म हो गई। तभी अंधेरी कोठरी से फटफट करता हुआ चमगीदड़ निकला। अब वह अमरूद के बाग में जाकर चोरी करेगा। लड़की ने ज्योंही उसे देखा, उसे उसकी चुगली की बात याद आ गई—अरे तो जिसकी फटफट से मैं डर जाती थी, वह असल में चमगीदड़ है ?—और यह कहकर वह घंटियों के सुरीले राग में खिलखिलाकर हंस पड़ी।

दाना बड़ा चौंका। उसने गुर्राकर कहा, 'क्यों हंसती है ?'

लड़की ने सरलता से कहा, 'वह तुम्हें अंधेरे भर की खबर दे सकता है। मेरे दानव ! दिन के उजाले में उसकी आंख नहीं खुलती और दिन में मेरे भाई इस दुनिया को कहां से कहां तक पहुंचा देते हैं।'

दाना सोच में पड़ गया। अमेरिका ने बहुत सोचा। शान्ति के रखवालों को कम्यूनिस्ट कहकर जुओं की तरह बीनने की कोशिश की। चन्द लोग जुएं कहकर कुचल भी दिए गए। पर उसकी खुजली बन्द नहीं हुई। तब उसने गरजना शुरू किया।

लेकिन अब लड़की ने दाने से डरना बन्द कर दिया। वक्त-बेवक्त वह उसे देखकर नफरत से मुस्करा भी देती। मेरे दोस्तो ! ऐसी क्या बात हो गई ? बात जो हुई अब उसके सुने बिना लुत्फ आने का नहीं, क्योंकि बात बड़े चोट की है। लकड़हारे के लड़के ने जिन्दगी की कठिन मंजिलें तय करते-करते एक जगह पड़ाव डाला। बैठने की देर थी कि उसने देखा कि एक जहरीला पेड़ सामने उगा है। और उसपर एक सुनहला पिंजरा

टंगा है और उस पिंजरे में एक तोता है। वह तोता उस दाने की ज़िन्दगी है। तो लकड़हारे लड़के ने जहर का पेड़ काटकर पिंजरा काबू में कर लिया।

यह हुई दूसरे महायुद्ध की बात। अब मेरे दोस्तो! यह बताओ कि जिसकी जान लकड़हारे के बेटे के हाथ में है वह दाना क्या सचमुच ताकतवर है? वह तो अब दया पर ही समझा जाना चाहिए क्योंकि किसी भी दिन तोता मारा जाएगा, और दाना अपने आप मर जाएगा। पर जब तक तोता नहीं मरता तब तक लड़की बन्धन ही में रहेगी। और अब भी अमेरिका लड़ाई चाहता है। क्योंकि उसके गढ़ में इन्सानियत कैद है।

शान्ति की शक्कर अपने मुंह में दबाए करोड़ों हस्ताक्षर चींटियों की तरह जीवन-निर्माण करने में लगे हुए हैं, करोड़ों पक्षी शान्ति की बालें उठाए आसमान में उड़ रहे हैं, लेकिन साम्राज्यवाद का अन्तिम दाना अभी तक धूल में नहीं गिरा है। तुम्हें तुम्हारी बुद्धि की शपथ है, उसपर कभी विश्वास मत कर बैठना।

अच्छा मेरे दोस्तो! नमस्ते। एक बात और सुनते जाओ। वह लकड़हारे का बेटा और कोई नहीं मैं हूं। जरा इन आखिरी दो शब्दों को ज़ोर से पढ़ना और सोचना कि तुम क्या पढ़ गए।

मजबूरी

वह झुका और उसने आंखें आधी-सी मींचकर मेरी तरफ देखा। वह एक खद्दर का कुर्ता पहने था, एक पाजामा। माथे पर परेशानी की लकीरें, गोया जानवर की तरह वक्त ने दो-चार नाखूनों की खरोंचें मार दी हैं।

'फिर क्या?' उसने कहा, 'जिस महीने में कपड़े बन जाते हैं, उस महीने खाने में कमी पड़ जाती है, और जिस महीने अच्छी तरह खा-पी लेते हैं, उसी महीने में ठीक से कपड़े नहीं पहन सकते।'

फिर हम दोनों हंसे। क्यों? शायद इसलिए कि इंसान की मजबूरी आज एक मज़ाक की बात बन गई है। हम जानते हैं यह गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए, पर चूंकि वह हो रहा है, अभी उससे निकलने का कोई चारा नहीं है, तो क्यों न उसे हंसकर टाला जाए।

हंसना एक खुशी है। खुशी इन्सान की जीत का पैमाना है। बहुतेरे बापों की आंखों में तब खुशी के आंसू आया करते थे जब उनके बेटे फांसी

के तख्तों पर, जवानी के प्यालों में शहादत के फेन उठाकर, भूल जाते थे और दिल से फूटकर निकलती मां की फरफराती आह झण्डे की तरह सलामी देकर कहती थी—देश के लिए, हजारों, लाखों इन्सानों की खुशनसीबी के लिए मेरे जिगर का टुकड़ा मिट गया।

तब आंसू की बूंद गिरती। उसी आंसू की बूंद में जो एक चमक है, वह क्या किसी हंसी से कम है ? तो हंसी न सिर्फ मजबूरी है। मगर वह इन्सान की रूह की छटपटाहट है, वह छटपटाहट जो खूबसूरत सांझ में आसमान में लाल और सुनहला बादल ढूंढ़ती है और इन्सान पर उतरकर सफेद चादर ढूंढ़ा करती है।

आज से सैकड़ों साल पहले मेरा दिमाग लौटकर देखता है कि एक छोटा-सा झोंपड़ा बना है। वहां कोई साधू नहीं रहता। एक जुलाहा रहता है। वह अकेला नहीं है। उसके पास ही उसकी स्त्री बैठी है। आदमी ताने-बाने से लैस, कुछ बुनता हुआ गा रहा है—झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया।

और लोई, उसकी स्त्री, बैठी कभी उसके मुंह को देखती है, और कभी बैठी-बैठी एक लम्बी सांस भरती है।

उस आदमी का नाम कबीर है। उसके माथे पर चमक है। वह जैसे जिन्दगी के किसी ऐसे हसीन सपने में खो गया है जो लोई कोशिश करके भी अभी समझ नहीं पाई है। उसकी वह गुनगुनाहट, सूतों की धुनियों पर गूंजती—शहंशाहों के ताजों पर पांव रखती, उठती और गिरती लहरों की-सी फौजों की तूफानी गर्दिश को खामोश करती मेरे पास चली आ रही है, और मुझे उसकी ताने-बाने पर चलती उंगलियों की गति दिख रही है। उससे उठती आवाज़ का संगीत मेरी आत्मा में भरता जा रहा है।

मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरा जो दोस्त सामने बैठा है, वह वही कबीर है। तब कबीर जान गया था, यह कबीर पहचान नहीं सका है।

मेरी चादर बहुत सफेद है, वह देखो, कितनी सफेद है। इसपर जरा भी धब्बा नहीं है। मेरा दोस्त अब आंखें झुकाए बैठा है। जैसे कबीर ने सब सत्य जानकर भी शून्य में मन लगाया था, शायद यह भी उसी ध्यान में मग्न है।

गजता हुआ गीत का संसार फिर उठ रहा है। मेरी चादर की बात

पूछना चाहते हो, सुनो। देखो चादर किसे नहीं मिली? सुर-नर-मुनि-किन्नर सबको मिली, पर सबने तो यह चदरिया ओढ़कर मैली कर दी।

और मेरा दोस्त कह रहा है, 'जिनसे हमने उम्मीद की थी कि इस दुनिया को वे अच्छा बना देंगे, वे इसे और भी गन्दा बना देंगे। वे क्या कर रहे हैं? ब्लैकमार्केट।' उसकी आवाज ऐसे अटकी जैसे गले में ईमान का फन्दा अटका कि क्या कहते हो? ऐसा जहरी सांप तुम्हारे कलेजे में से निकला और तुमने नीलकंठ महादेव की तरह इसका जहर भी पी लिया?

मैं चुपचाप देख रहा हूं।

क्या यह झूठ है कि आज देवताओं ने अपनी चादर मैली कर दी है? सच है। वाकई उन्होंने ऐसे धब्बे डाले हैं जो अब कभी नहीं छूट सकते। जब हम उनको याद करेंगे, तो इन धब्बों को हमेशा याद करेंगे।

इन्सान की चादर तो वह है कि जो जाहे उसे शादी-बारात में, महफिल में ओढ़कर बैठ जाएं।

पर यह नहीं है कि अब वैसी चादर ही नहीं है।

चादर है, पर वह छोटी है। अगर उसे ओढ़ा जाए तो पैर ढकते वक्त मुंह खुला रह जाता है और मुंह ढका जाए तो पैर खुले रह जाते हैं।

कबीरदास के ज़माने में सूर्य का भी ज्यादा अखत्यार था। अब तो जैसे हर मौसम बरसात हो गया है। वही चिपचिपाहट, वही चिकना पसीना और अगर मुंह पर मक्खियां भिनभिनाती हैं तो पांव को मच्छर काटते हैं।

मेरा दोस्त अब कह उठा, 'यह तो ठीक है कि इन्सान को परेशान नहीं होना चाहिए पर उसकी भी एक हद होती है।'

लिहाजा बात तय हो गई कि यह छल की बात है। कहा जाता है किसी ज़माने में एक असुर धरती को पाताल के भी नीचे खींचकर ले गया था और उसने गन्दी चीज़ों की दीवाल बनाकर उसमें धरती को बन्द कर दिया था। तब आदमी का ज्ञान भी बन्द हो गया था। उस वक्त भगवान ने जंगली सुअर का रूप धरकर दीवाल तोड़ी थी। क्योंकि दीवाल गंदी थी। भगवान ने वही रूप धरा जो उसे नष्ट कर सकता था और भगवान ने पूरी अक्लमंदी और भरपूर हिम्मत के साथ अपने दांत पर धरती को उठा लिया और प्रलय में से उसे उबार लाए। तब ज्ञान गूंजा।

क्या आज भी उतनी ही हद हो गई है ? आज भी क्या मैली दीवारें उठ रही हैं ? जो चिल्लाते हैं, कि लोहे की दीवारों से हमारी रक्षा करो, वह झूठ कहकर मैले की दीवारें उठाते हैं। और इस धरती को ज्ञान के साथ हमेशा के लिए पानी में डुबा देना चाहते हैं। क्योंकि इन्सान की खुशहाली जब एक होकर उठती है तो वे उसे लोहा कहते हैं। इन्सान की तरक्की उन्हें फौलाद से भी खतरनाक दिखाई देती है।

कबीरदास के जमाने की बात याद आते ही फिर विचार आता है कि क्या तब तलवार नहीं थी ? कबीर के गीत नंगे पांव सदियों से उन नंगी तलवारों पर नाचते रहे हैं। और नाच-नाचकर वे लहू-लुहान हो चुके हैं पर उन गीतों से मेरे दिल के लहू की बूंदें टपकती हैं। उन्हें जब चादर पर डालता हूं तब एक बार बिजली कौंधती है, फिर सफेदी में सफेदी मिल जाती है। मुझे धब्बा नजर नहीं आता।

आज है कोई इन्सान जो कहे कि उसके पास वह चादर है जो कबीर के पास है ?

है। वह मेरा दोस्त है, उसकी चादर, जैसा कि मैं अभी कह चुका हूं, छोटी है मगर साफ है।

मैंने उसे राय दी कि वह इसे ज़रा कुछ बड़ी कर ले, ताकि आराम से उसे ओढ़ लिया करे।

मेरा दोस्त मुस्कराया। मैंने देखा और समझा। कितना कठोर सत्य था। अब वह सूत ही नहीं मिलता जिसका रंग कोरी चादर के सूत से मिल जाए।

लहू में भिगोकर ईमान की धूप में सुखाकर जो चादर रखी है उसपर तो सूरज की सफेदी ढलती आ रही है। वह सूत है कहां जो उसका मुकाबला कर सके ? फरेब के बन में से लालच पूलियों को तोड़कर जब सुखाता है, तो वे ऐसे उठती हैं जैसे झूठ उड़ता है, झूठ जिसके पांव नहीं होते।

मेरा दोस्त अब खामोश है। शायद वह कुछ सोच रहा है। वही शून्य जहां मैं और तू नहीं रहता, जहां कबीर चल होकर भी स्थिर हो गया था, पर मैं सोच रहा हूं क्या सचमुच अब दुनिया में किसी व्यापारी के पास वह तागा, वह सूत ही नहीं बचा जिससे किसी ज़माने में कबीरदास अपनी चादर

बुना करते थे ?

दावेदार

'मकान क्या है' उसने कुछ झेंपते हुए कहा, 'ऐसे ही है। जहां जगह मिल जाए, उसीको बहुत समझिए।' फिर वह हंसा। उस हंसी में कितना विक्षोभ था, कितनी वास्तविक सुख-भावना थी, यह मैं समझ नहीं सका। आजकल आदमी के ईमान की कीमत रुपये की तरह घट गई है। पहले जिसके पास बीस हज़ार रुपये थे, वह आनन्द करता था। जब लड़ाई आई और धरती-धमक बम के गोले फटने लगे, तब बीस हजार की कीमत गिर गई। और एक लाख रुपया बीस हजार के बराबर हो गया। उस समय ईमान की पंचगुनी ज़रूरत पड़ने लगी। और आदमी देखता है, क्या वह पंच-गुनी ईमानदारी बरत रहा है ?

रुपये और ईमान का एक दूसरा ही सम्बन्ध है। रुपये की कीमत जैसे-जैसे घटती है, इन्सान का ईमान भी घटता है, रुपये की कीमत बढ़ती है, इन्सान का ईमान भी बढ़ता है।

प्रसिद्ध कथा है कि एक बार एक पठान को किसीने कलाकंद खिलाया। पठान ने खाया तो फड़क उठा। उसने भेड़ खाई थी, बकरा खाया था, मगर ऐसी सफेद-सफेद चीज़ नहीं खाई थी। उसने निश्चय किया कि वह ऐसी चीजें ज़रूर खाया करेगा। उसने पूछा, 'ऐ भाई ! कहां मिलता है ये चीज ?'

उस आदमी ने कहा, 'बाजार में पठान भाई, ढेरों।'

पठान को आश्चर्य हुआ। पठान इतिहास के अनुसार तो परम ज्ञानी, मनुष्यों में व्याकरण के आदि रचयिता पाणिनि की सन्तान है, परन्तु अब वह कम पढ़ा-लिखा होता है। वह बाज़ार गया तो एक जगह साबुन की कतली पर कतली सजी धरी थीं। झट से बोला, 'देना चार आने का।'

दुकानदार ने तोल दिया। पठान लेकर खुश-खुश एक जगह बैठ गया और उसने बड़े प्रेम से खाया।

'लाहौलविलाकूवत !' पठान ने कहा, 'अलहम्दुल्लिल्लाह !'

थूका। पर फिर खाने लगा। किसीने देखा तो पूछा, 'पठान ! क्या खाता है ?' पठान ने उत्तर दिया, 'पैसा खाता हूं।'

'पैसा !!'

एक शब्द है---पैसा! ! मनुष्य आज पैसा खा रहा है। और जब इन्सान धातु खाता है तो उसका शरीर भी बदल गया है।

बेशर्मी की आंखों में चालाकी का खिचाव है। और मजबूती के मसूड़ों में हड्डी के नहीं, बेईमानी के दांत हैं, उनसे जब वह पैसा चबाकर खाता है तब आंतों में नर्मी नहीं रहती वे बैंक की तरह हो जाती हैं।

श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता में जो विराट रूप दिखाया था, वह सब पढ़े-लिखे हिंदू जानते हैं। बेहतर हो, गीता के नये संस्करण में इस नये विराट पुरुष का भी उल्लेख कर दिया जाए जो पैसा खाता है, और बेमुरव्वती का धुंआ उगलता है।

और फिर मेरे दोस्त ने कहा, 'वैसे मेरे मकानदार शरीफ हैं। बोलना ऐसा मीठा जैसे चमचमाती खूबसूरत छुरी निहायत फैन्सी म्यान में धरी हो। छुओगे तो पार हो जाएगी।'

मकानदार के कपड़े निहायत साफ, बीवी बिल्कुल अलिफ की तरह बेलाग, बच्चे वे जो 'ऋ' पढ़ना नहीं जानते, क्योंकि न अब ऋषि हैं, न ऋ की जरूरत पड़ती है। मकानदार की शर्तें निहायत सादी। सिर्फ किराये की बात है। सो आज आप देख लीजिए, आपको कहीं सस्ता मिल रहा है ?

सचाई है, नहीं, कहीं भी मकान ही नहीं मिल रहा है, फिर सस्ते-मन्दे की बात ही क्या है ?

तो सराफल की सड़क पर चलना है तो कुछ भी करिए, चमकदार जूता पहनना ही होगा। पहनकर चलेंगे तो भले ही कील चुभती रहे, कोई हर्ज नहीं।

अभी मेरा दोस्त गया ही था, एक सज्जन और आ गए। उन्होंने कहा, कहा तो बहुत कुछ, पर मकसद उनका फकत इतना था, मैं अमुक प्रोफेसर के घर के नीचे के हिस्से में रहता हूं। मेरी रसोई में धुंआ निकलने की जगह जगह नहीं है, फिर आसमान मुझे दिखता नहीं, बारह महीने भीतर सोना पड़ता है।

जिस घर का बयान था उसकी याद आते ही मैं चौंक उठा। मैं उस घर को देखकर सोचा करता था कि वह किसी राजा ने भुस भरवाने की जगह बना रखी है। पर जब सुना कि जहां भुस भरना ठीक था वहां एक

प्रोफेसर ने एक प्रोफेसर को रख छोड़ा है, तो मुझे पठान याद आ गया।

देखता हूं, जिन्दगी का हर पहलू चाहता है कि इन्सान वही पठान बन जाए। सिनेमा जाइए तो अमेरिकी फैशन चल रहा है। उसमें चोर-डाकुओं की जिन्दगी की तारीफ की जाती है। बाजार जाइए तो हर चीज मांगी खरीदिए। खाने को घी लाइए तो वह या तो डालडा वैजीटेवल होगा या उसमें नारियल का तेल मिला होगा। तेल लाइए तो उसमें पवित्र वृषभ-मूत्र या सत्यानासी का तेल होगा, यहां तक कि रबड़ी लाइए तो उसमें लच्छों की जगह कुटा हुआ स्याहीसोख्ता पड़ा होगा। आप जिन्दगी चाहते हैं आपको बीमारी मिलती है। आप उसकी कीमत में जिन्दगी की मेहनत चुकाते हैं, और मौत के टुकड़े चबाकर अपनी भूख मिटाकर सोचते हैं, आपका पेट भर गया है। पेट भी अब पेट नहीं रहा, अपनी असलियत से ऊबा हुआ आदमी इस पेट को भी दोजख कहने लगता है। और बेशर्मी की हद देखिए कि जिसे अब वह दोजख कहता है, वह उसीके लिए जिन्दा है। उसीके लिए इतनी हाय-हाय कर रहा है। और वह जितनी हाय-हाय करता है उतनी ही उसमें मजबूरी बढ़ती जा रही है। अब गोया जिन्दगी कुछ ऐसी ही हो गई है जैसे संस्कृति की नाव को आदमी अपनी ही तरक्की की लहरों में डूबते हुए देख रहा है। कैसे भी हो वह खा लेना चाहता है। भोग लेना चाहता है, चाहता है क्योंकि जिन्दगी एक बार की है। पुनर्जन्म का डर तो है मगर पक्का यकीन तो नहीं है।

और फिर प्रोफेसर की आंखें उठीं? मैंने देखा, वह ज्ञान का ग्राहक, जो संसार में ज्ञान फैला रहा है, जो अज्ञान की भेड़ों पर से ज्ञान की ऊन काटकर कम्बल बनाकर बेचता है, वह सोते में अब आसमान कभी नहीं देख पाता। उसके बच्चों को मालूम ही न होगा कि 'सप्तर्षि' कौन हैं, रोहिणी कहां है? और प्रोफेसर भी चला गया है, तब मैं हंस रहा हूं। खुशी से नहीं हंसता, वैसे हंसता हूं जैसे कंस को देखकर नारद हंसा था। कंस ने मासूम बच्चों को उठा-उठाकर धरती पर पटककर मार डाला। मगर कवियों ने कहा है कि एक बच्चा उन मोटी-मोटी बन्दीगृहों की दीवारों में से निकल गया था, उसके लिए प्रचण्ड धारा कालिंदी भी झुक गई थी।

तभी मैं जानता हूं कि पठान सदा ही साबुन नहीं खाएगा। एक दिन

जब पठान समझ जाएगा कि साबुन क्या है, कलाकन्द क्या है, तब वह उनसे बात करेगा जो कलाकन्द की तरह साबुन को सजाकर रखते हैं, और उसे इन्सान के खाने के लिए बेच देते हैं।

अगर जिन्दगी बरसती घटाओं में फूलों भरी डालियों की झूलती मस्ती है मेरे दोस्त, तो वह जिन्दगी है। अगर जिन्दगी सचमुच जिन्दगी है, तो उसमें यह कमीनापन क्यों हो ? पुराने लोग कहते थे कि बेमुरव्वत की आंख में सुअर का बाल होता है। आज जब मैं ऐसे खुदगर्जों को देखता हूं तो मुझे उनके चेहरों पर आंखें नहीं दीखतीं, गलीज सुअर दिखाई देते हैं।

जिन्दगी के दावेदार तो वे हैं यानी जिनका दिल साफ है। सोचो कि जब वे जानेंगे कि साबुन क्या चीज है, तो उन गलीजों की कितनी कड़ी सफाई करेंगे ?

गति का सत्य

इतिहास कहता है, मैं नहीं कहता। चारों ओर से एक ही शब्द आ रहा है, मैं नहीं रुकूंगा। समन्वय कहीं नहीं है। हो कैसे ? एक कहता है, मैं मरूंगा—मैं नहीं रुकूंगा। दूसरा कहता है, मैं जिऊंगा—मैं नहीं रुकूंगा।

मरने वाला जीकर मरता है। जीने की चाहना रखने वाला मरकर भी नहीं मरता। जो जी चुका वह कब मरेगा; जो कहता है वह जिएगा उसके सामने मौत की काली शक्ल ही नहीं है।

मृत्यु व्यक्ति की होती है। जीने वाला समाज है। व्यक्ति जब तक जीवित है तभी तक वह समाज है। जब वह मर जाता है तब वह समाज नहीं रहता है, व्यक्ति हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मृत्यु एक संकुचित वस्तु है। जीवन एक व्यापक विस्तार है। मृत्यु का विशेषण यह है कि अमुक मरा, जीवन का विशेषण ही अभी निश्चित नहीं हुआ। वही तो है।

जो मरने की बात कहता है वह एक जर्जर समाज है, वह अपने विरोधों और विकारों से घबरा गया है, जो जीने की बात करता है वह है। वह रहेगा, वह कभी नहीं मिटेगा।

आज यही तो दो चित्र सामने उपस्थित हैं। पूंजीवादी समाज की अहम्मन्यता मृत्यु के पहले के दुःस्वप्न की मंत्रणा है, और साम्यवाद विजय

की दुन्दुभी बजा रहा है। ये विराट कारखाने, यह हरी-भरी धरती, किसकी है ? उसकी जो कहता है कि इसमें कुछ नहीं है ? नहीं, यह उसकी है जो चाक चलाता है, जो धरती को गोड़ता है, पानी देता है।

सिद्धान्त की कसौटी तो उसकी वास्तविकता है। कारखाना बन्द है तो वह मुर्दा है, धरती अगर जुती नहीं तो वह भी मुर्दा है। और पूंजीवाद में सब जगह गतिरोध है। अगर पैदावार बढ़ती है तो माल की खपत का सवाल है कौन लेगा उसे ? फिर दाम गिराने होंगे, और दाम गिरा दिए तो फिर लाभ कहां होगा ? लिहाजा उसकी नींव आज खोखली हो गई है।

लेकिन साम्यवाद का मतलब दूसरा ही है। कारखाना चलेगा, धरती जुतेगी तब ही माल पैदा होगा। पैदा नहीं करेगा तो इन्सान करेगा क्या और खाएगा क्या ? ज़रूरत को तो पूरा करना ही पड़ेगा। दुनिया कोई एक आदमी की तो है नहीं। हज़ारों, लाखों, करोड़ों आदमी, औरत, बूढ़े, बच्चे हैं, उन सबको चाहिए।

यह हुआ भेद—स्पष्ट हुआ कि दोनों कहते हैं, 'मैं नहीं रुकूंगा, मैं नहीं रुकूंगा।'

इतिहास कह रहा है, मैं नहीं कहता। और फिर एक सवाल उठता है। क्या यह ज़रूरी है पूंजीवाद समस्या नहीं सुलझा सकता ? आखिर उसने हमें कितना आगे बढ़ा दिया है। पैदावार के साधनों का यदि कुछ लोग ट्रस्टी बनकर नियन्त्रण करें और सबके लाभ के लिए काम करें, तो क्या वह ठीक नहीं होगा ? साम्यवाद में भी कुछ ही लोग तो इस काम को करते हैं ?

मैं मजबूर हूं। मैं ऐसे सवालों का जवाब, अपनी अटकल से नहीं दिया करता, मैं अपने गुरु इतिहास से पूछा करता हूं।

और वह मनीषी वृद्ध मुझसे कहता है कि यह असम्भव है। कुछ लोग और अधिक लोगों का प्रश्न ही नहीं उठता, प्रश्न है स्वार्थ का। स्वार्थ किसका सधता है ?

यदि वह स्वार्थ किसी वर्ग विशेष की बपौती बनता है, तो कैसे वह सबका लाभ कर सकता है ?

इतिहास पूछता है कि तुम मनुष्य का सुख किसे कहते हो ? क्या तुम इसे सुखी संसार कहते हो कि एक का बच्चा स्कूलों, कालेजों में पढ़े, पढ़कर तैयार हो, हुकूमत करे, राज करे, और दूसरे के बच्चों को यह सुविधा ही न दी जाए ?

इतिहास कहता है कि वही धर्म है जब मनुष्य मनुष्य पर अत्याचार नहीं करता, जब अत्याचार का अर्थ कल्पना नहीं; समाज की दुर्व्यवस्था समझा जाता है। जिस व्यवस्था में भोले-भाले बच्चों को, मां को यह सिखाना पड़ता हो कि बेटा ! यह दुनिया बहुत बुरी और चालाक है, इसमें तुम भोले रहोगे तो ठगे जाओगे; जिस समाज में पढ़ी-लिखी युवतियां अपनी जवानी की कीमत मोटर की सैर समझती हो; जिस प्रवाह में हमें आदत पड़ गई हो कि हम सड़क पर भिखारियों को आत्मसम्मान भूलकर भीख मांगते देखें और परवाह न करें; जिस दुनिया में हम बाजारों में कदम-कदम पर चोरबाज़ारी को व्यापार समझकर जीते चले जाएं और हमारी खाल भैंस से भी मोटी हो जाए कि हम किसीकी मां-बहनों को पैसे के लिए मजबूर होकर अपने को बेचते देखें, देखें कि वहां स्त्रियां अपने शरीर को जघन्य मनुष्यों की बर्बर लिप्सा को तृप्त करने के लिए आत्मा हीन बनाकर मांस-पिण्ड के समान उनके सामने छोड़ देती हों, उस समाज को हम ज़िन्दा कहें या मुर्दा ? जहां लाखों आदमी बेकार हों, जहां इन्सान भूख से मजबूर होकर चोरी करते हों, जहां दिन भर घर की औरतें चूल्हे फूंकने में अपनी प्राणवायु जैसी कीमती चीज़ को नष्ट कर देती हों, जहां औरतों को वेश्या बनकर बैठने को लाइसेंस मिलते हों, जहां खानों में आदमी सुबह से शाम तक कोयला खोदते हों, और शाम को ऐसे झोंपड़े में बेहोश-से पड़े रहते हों, जहां से आस्मान दीखता हो, छिरछिरी जिन्दगी-सी छिरछिरे आस्मान में से बदनसीबी के तारे टिमटिमाते हों, उसे हम ज़िन्दगी कहेंगे या मौत ?

मैं किसी व्यक्ति से नहीं कहता। मैं जिससे बात करता हूं वह खुद रोता है। क्या बताएं कि चोरबाज़ार अपने को चोरबाज़ारी करने को मजबूर बताता है। कपड़ा अपने आप क्या हम महंगा बेचते हैं ? बेचते हैं क्योंकि रूई महंगी मिलती है।

गोया कोई घृणित रोगी कहे, मैंने ऐसा कोई काम नहीं किया कि मैं यह

घृणित रोग पाता, यह तो मेरी खान्दानी बीमारी है। यह खान्दान कैसे बच सकता है ?

और तब सवाल उठता है, व्यक्ति की स्वतंत्रता का। व्यक्ति के स्वातन्त्र्य की बात उसी जगह चल सकती है, जहां समाज स्वतंत्र हो। जहां समाज स्वतंत्र नहीं, वहां व्यक्ति का स्वातन्त्र्य सबसे बड़ा झूठ है। वैसे कोई कहे कि व्यक्ति का स्वातंत्र्य शरीर और देह से ही मुक्ति है, तो मैं क्या उसे जीवन कह सकूंगा ?

उसको तो मैं मृत्यु कहता हूं। जिनके लोहे की चोट से पहाड़ कराहते हैं, धरती गाती है; जिनके पापों की धमक से विराट् वेग से शक्ति उमड़ती है, वे दूसरा सवाल पूछते हैं। वे कहते हैं कि हम इतने समर्थ क्यों हैं ? तुम भीख क्यों मांगते हो ? वह सामर्थ्य तुममें क्यों नहीं है कि तुम भीख दे सको। हमारे यहां आदमी नंगा और भूखा क्यों नहीं रहता ? हमारे यहां औरत इतनी इज़्ज़तदार क्यों है ?

दोनों कहते हैं, 'मैं नहीं रुकूंगा, मैं नहीं रुकूंगा।'

एक गिरने से नहीं रुकेगा, दूसरा उठने से।

इतिहास कह रहा है, मैं नहीं कहता।

दलाल

भारतीय संस्कृति सदियों से कहती आ रही है कि मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु उसकी सम्पत्ति है। महात्मा सुकरात कहते थे कि मैं कम से कम चीज़ें चाहता हूं। ईसामसीह ने सोने के ताज को ठुकराकर कांटों का ताज पहनकर दूसरों के लिए सूली पर चढ़कर जान दे दी। महात्मा गांधी ने अपने वैभव और सारे राजसी ठाठ को छोड़ दिया, एक खोर ओढ़कर जीवन काट दिया। और ताल्सताय ने अपनी सम्पत्ति को त्यागने की चेष्टा की। पेट पालने के लिए जूते सिए। और कौन नहीं जानता कि मुसलमान बादशाह खज़ानों के रहते हुए भी कोई-कोई अपने हाथों से कुरान लिखकर उसे बेचकर अपना खर्च चलाते थे। फिर भी क्या सम्पत्ति ने इन लोगों को छोड़ दिया ? आप कहेंगे जो सब छोड़ देता है, उसके पीछे सब कुछ दौड़ने लगता है। जब योगी धरती पर से उठकर अपने शरीर की धूल तक झाड़ देता है, तब उसके पांवों की धूल लेने के लिए अनिन्द्य सुन्दरी युवतियां और महामहिम सम्राट् तक

व्याकुल हो जाते हैं, क्योंकि संसार समर्थ की पूजा करता है। सामर्थ्य अचानक प्राप्त नहीं होती। उसके लिए साधना की आवश्यकता होती है।

तो कम से कम चीज़ लेने की रुचि वैसे देखा जाए तो भले ही अच्छी हो, पर वह अपने आप में एक दूसरे प्रकार की सामर्थ्य है। एक बच्चा बहुत कुछ चाहता है। नहीं मिलता है तो, कहता है नहीं चाहिए। उसमें एक ओर लालच है, दूसरी ओर विवशता। योगी चीजों से ऊब गया है, उसे अब कुछ नहीं चाहिए। यदि यह बात है, तो उनके लिए लागू होती है जिनके पास इतना ज़्यादा है कि वे उस सबसे ऊब चुके हैं। यदि बात यह है कि पास कुछ भी नहीं, मिल सकता भी नहीं, लिहाजा भीतर ही भीतर मन मारकर ऊपर से यह दिखाओ कि हमें चाहिए ही नहीं, दिखाते-दिखाते जब आदत पड़ जाएगी तो वाकई फिर चाहना नहीं रहेगी। पर यह अभावात्मकता है। कभी-कभी ही ऐसी आदत पड़ती है। नहीं पड़ती तो अशर्फी को छोड़कर चलने वाला कभी-कभी कूड़े में पड़े एक पैसे को भी उठा लेता है।

एक ओर सम्पत्ति के साथ जब यह हठयोग है, तो दूसरी ओर सम्पत्ति से ही सब परेशान हैं। बिरला सेठ जैसे आदमी अपनी हीनता का बखान करते हैं, बड़े-बड़े पैसे वाले जप-तप, ध्यान-मन्त्र करवाते हैं। दूसरी ओर सम्पत्ति के अभाव में हज़ारों-लाखों आदमी कितने दुःखी हैं यह कहने की ज़रूरत ही क्या है? सूरज को मसाल दिखाए, सो हम क्यों व्यर्थ परिश्रम करें? करोड़ों बच्चे सड़कों पर, खेतों में, कारखानों में, बाबुओं के घरों में भूखे मरते हैं। चन्द बच्चे अमीरों के यहां अजीर्ण से भी मरते हैं।

गरीब को डर है कि अमीर मेरे घर डाका डाल रहा है। अमीर को डर है कि यह डकैती का माल कैसे कायम करे? कैसे वह तरकीब की जाए कि गरीब सदा सोता ही रहे। जागते ही वह चौकस हो जाएगा, फिर कैसे कोई उसके घर में डाका डाल सकेगा?

मनुष्य दोनों अवस्था में दुःखी है। गरीब कहता है कि मैं सम्पत्ति के अभाव में दुःखी हूं। मुझे सम्पत्ति चाहिए। अमीर कहता है कि यह सम्पत्ति बहुत बुरी चीज़ है। इसीसे आदमी चोर बनता है, पुलिस बनती है, तोप-बन्दूकों की ज़रूरत होती है। मेरे पास धन है पर मैं भी सुखी नहीं हूं। तुम दूर से देखते हो तभी तुम्हें यह इतनी प्यारी दिखाई देती है। सुखी तो वह है

जिसको सम्पत्ति का मोह नहीं है, जो धूल को हीरा और हीरा को धूल समझता है।

मनुष्य के अनेक दुःख हैं। किसीका विवाह नहीं होता, होता है तो प्रेम नहीं होता, मां को शिकायत है बेटा बहू के कहने में है, बच्चे को शिकायत है कि बाप उसपर सख्ती करता है, किसीको मन्दाग्नि है, खाने को है पर सब बेकार ही है, किसीको कोई और रोग है, गरज यह कि आज सम्पत्ति और परिवार दोनों दुःख की जड़ हैं। आज क्यों, कबीरदास, उनसे पहले गोरखनाथ, उनसे पहले वज्रयानी सिद्ध, सबने यही कहा। सबको छोड़ दो, सब बुरे हैं।

अब अगर पुराने आदर्शों को लिया जाए तो पुरुष सबको छोड़ दे। छोड़ते समय ही सम्पत्ति छोड़ दी गई। जिसने सम्पत्ति ही छोड़ दी उससे किसीको क्या भय। वह न तो गरीब का साथी, न अमीर का; उसमें ही जो व्यवस्था चल रही है, उसे छोड़ दिया! तुम पहाड़ की तलहटी में, मरो-गिरो, म तो आसमान की चादर तानकर पहाड़ पर वैसा बैठा हूं जैसा पैदा हुआ था, और भस्म रमाकर अनुभव कर रहा हूं कि वस्तु का अन्त क्या है।

यह है व्यक्ति का रूप। पर मैं तो इसे तब मानूं जब वह पहाड़ के नीचे की हाय-हाय सुने और कहे कि मैं यह सब बेकार कर रहा हूं। अकेला अपना उद्धार ही क्या उद्धार है?

और क्या वह सचमुच उद्धार है? सम्पत्ति से पलायन, स्त्री से पलायन क्या सचमुच स्वातन्त्र्य है? आए मां के पेट से, लगे मां को ही गाली देने कि माया है, माया है। योगी ने कभी नहीं बताया कि स्त्री का अन्त क्या है! अन्त क्या! जो स्वयं माया है, सम्पत्ति है उसका क्या स्वातन्त्र्य!

तो स्त्री, सम्पत्ति की जैसी की तैसी रही। पर कमल के पत्ते, तू तो अपने ऊपर एक बूंद भी न ठहरने देगा, यह भी मालूम है कि तेरी नाल नीचे के पानी में होकर और भी नीचे कीचड़ में दबी है। शून्य में आंख गड़ाए बैठे रहने वाले, तू पालथी लगाए धरती पर बैठा है। अगर तू आसमान में उड़ गया तो वह ज्यादा कमाल की बात है, कि उस दौरान में तू एक लंगड़े की बैसाखी बनकर उसे उसकी मंजिल पर पहुंचा देता, वह अच्छा रहता?

पर यह सब तो है घुमाव-फिराव की बात। तत्व तो है कि सम्पत्ति

मनुष्य को बनाती-बिगाड़ती है। मनुष्य को वर्गों में बांट देती है। क्या उसकी निन्दा करके, रोटी से ऊबकर, तू भूखे को यह समझा सकता है कि रोटी बहुत बुरी चीज़ है?

तू मां के पेट में बुरा होकर आने की कल्पना करता है, मैं कहता हूं तब तू पवित्र होता है। सम्पत्ति तेरे परिवार, शरीर, मन, सब सुख-दुःख को आज दबा बैठी है। वह छाया-ग्राहिणी है। क्यों कि तू उसका दास है।

सम्पत्ति को यों छोड़कर बहुतेरे चले गए जैसे पापिन कहकर वेश्या को छोड़ जाते हैं, पर संसार से वेश्यावृत्ति तो अभी नहीं गई।

धनी कहता है, वह धन के कारण पाप करने को मजबूर है। दरिद्र कहता है वह धन के बिना पाप करने को मजबूर है। तब निष्कर्ष निकला कि व्यक्तिरूप न धनी बुरा है, न दरिद्र। बुरी है सम्पत्ति! तो क्या उसे त्यागकर मनुष्य सुखी हो सकता है?

नहीं, सम्पत्ति का उचित नियंत्रण ही संम्पत्ति की समस्या का हल है। उस समाज की आवश्यकता है जहां श्रम की लूट नहीं होती, कोई किसीसे पैसा छीनता नहीं।

यदि ऐसा हो गया तो फिर न धनी रहेगा न दरिद्र; न मनुष्य एक दूसरे से ईर्ष्या ही करेगा। आदमी अपनी योग्यता के अनुसार कमाएगा, पर कोई भी इतना अयोग्य नहीं रहने दिया जाएगा कि वह कुछ कमा ही नहीं सके।

हमारे पूर्वज ठीक कहते थे कि सम्पत्ति दुःख की जड़ है पर वे उसे छोड़ने को कहते थे, यह गलत था। छोड़े क्यों? जिसको हमारा समाज पैदा करता है, उसका क्या समाज उचित वितरण नहीं कर सकता?

हम तो उस समाज में व्यक्ति का उत्कर्ष पाते हैं जहां सब बैठकर ऐसे दूध पीने के अधिकारी हों, पीते हों, जैसे एक ही मां के बेटे हैं। उसीने वात्सल्य से भर कर सबको दूध बांटा है। दया करके नहीं, बल्कि इसलिए कि उन सबका दूध पीने का अधिकार है।

रोग है, मृत्यु है, तनिक इसे धन से अलग करके देखिए। यह मनुष्य के सामने उसके शत्रु हैं। मनुष्य धन से जीतना चाहता है। पर धन की समस्या में इन्हें मिलाकर मनुष्य के सुख-दुःख को रहस्यात्मक क्यों बना दिया जाता है? इसलिए कि ऐसे शून्यवादी छलिया दर्शन सिद्धांत पैदा करने से सम्पत्ति

वाले दूसरों को भ्रम में डालते हैं। सौ शिक्षा देते हैं; पर क्या कोई अपनी सम्पत्ति देता है? देता भी है तो दान देता है, कम्बल बटवाता है; अपने कारखाने के मजदूरों की तनख्वाह नहीं बढ़ाता। दान तो धर्मादे से करता है, धर्मादा मजदूर से आता है। किसीकी जेब काटकर उसका माल वापस करने में क्या तारीफ है? जाने तो तब, जब शोषण का आधार बदला जाए।

बदलने वाला तो वह है जिसकी जेब कटती है। अब वह कहने ही लगा है कि सम्पत्तिशालियो! धन बुरी चीज़ है, तुम्हारी आत्मा को शुद्ध करने के लिए हम तुम्हें उससे मुक्ति देंगे, क्योंकि मानुस-देह तुमने भी पाई है। और हम नहीं चाहते कि यह मानुस-देह तुम जीवन भर चोरी, डकैती और झूठ में नष्ट कर दो।

खण्डहर के धन पर सांप की तरह बैठकर ज़हर उगलते रहने से वह सम्पत्ति किसीके काम नहीं आती। उस धन को निकालकर नई इमारत बनानी है, व्यक्ति और व्यक्ति—अर्थात् समाज उसे गढ़ेगा, सांप का बीच में जीवित रहना असम्भव है।

५
बिखरती बिजलियां

रेडियो-कथा

भूमिका

'कांच गिर गया। टूट गया मां ?'

'क्या है बेटा, दुःख न कर? आंसू न गिरा। वे कांच नहीं होते।

'मां, वे क्या होते हैं ?'

'मन का प्यार, बेटा ! सुन ! जो औरों के लिए रोते हैं उनके आंसू भी हीरों की चमक को हरा देते हैं।'

'कुछ गाना भी जानते हो ?'

'यही कुछ थोड़ा-सा। घुटन की कीचड़ में मेरा स्वर वह मुलायम डंठल बन जाता है जिसपर गीतों के कमल खिलते हैं।'

'तो सुनाते क्यों नहीं गायक ?'

'सुगन्धि के तालों पर लय झूमती है, और आनन्द के भौंरे नाचते हैं।'

'शीरा बिखर गया।'

'धूल में मिल गया, छोड़ दो।'

'सचमुच ? मिठास की गन्ध भी कितनी सुखदायक होती है।'

'तुम कौन हो ?'

'हिन्दुस्तान।'

'क्या चाहते हो ?'

'इससे पहले कि काल मेरी डायरी उजाड़ दे, तुम चाहो तो कुछ याद कर लो। शायद एक क्षण में युगों की सार्थकता मिल जाए !'

'ये तस्वीरें कहां से लाए ?'

'ये अपने आप रंगती हैं अपनी स्वयंजात रेखाओं को।'

'अच्छा।'

'जब तस्वीरों और आंखों में दर्द का तार खिंचता है, तब लकीरें भी बोलने लगती हैं, जानते हो ?'

'अंगारे क्यों नहीं बुझे ?'

'क्योंकि लहू गिरने से वे धधकते हैं और बलिदान का हर झोंका उन्हें लपेटों से भर देता है। काले सांप के काटे पर यह अंगारा दवा बन जाता है। वह ज़हर के आखिरी धब्बे तक को जला देता है।

मां की कहानी

'बेटा !'

'हां मां।'

'राजपूताने की अरावली श्रेणियों में गागरोन का गढ़ बड़ा ही महत्व-पूर्ण था। क्योंकि उसे कोई विदेशी जीत नहीं पाया था। वहां बलीडा घाट और गिद्धकराई नामक स्थान बहुत ही सुन्दर थे। पीपा वहां का राजा था।'

'हां मां।'

'उस पीपा के यहां एक बार वैष्णव साधु पहुंचे। राजा ने उनका सम्मान नहीं किया, क्योंकि वह भगवती देवी की पूजा करता था। लेकिन वैष्णवों ने उसकी आंखें खोल दीं। उन्होंने बताया कि खाली रजपूतनी शान काम नहीं देगी। उसके लिए जनता का, गरीबों का भला करना होगा, क्योंकि भगवान तो गरीबों में पलते हैं। तब पीपा के मन में हुमक-सी उठने लगी। वह सोचने लगा कि किस तरह वह सबको उठा सके।'

'हूं। फिर ?'

'अन्त में वह एक वैष्णव गुरु को ढूंढ़ने निकला।'

'घर से निकल पड़ा?'

'हां। चलते-चलते वह काशी पहुंचा।'

'क्यों?'

'उसने सुना था कि काशी में दक्षिण भारत का एक साधु आया है।'

'क्या नाम था उसका?'

'स्वामी रामानन्द।'

'अच्छा।'

'स्वामी रामानन्द ने उत्तर भारत में हलचल मचा दी थी। वे अत्याचारी राजाओं के खिलाफ प्रजा में साहस भरते थे। वे कहते थे—राम ही तुम्हारा रक्षक है। राम सबका है। राम किसी एक जाति का नहीं। राम में विश्वास रखो, सबका उद्धार होगा। जीवन से निराश मत हो।—स्वामी रामानन्द के यह वचन सुनकर लाखों आदमी निर्भय होने लगे। वे फौजों से फिर नहीं डरते थे। पीपा भी उन्हींके पास दीक्षा लेने गया।'

'फिर?'

'जब वह काशी पहुंचा, उसने रामानन्द को साधु-सन्तों में घिरा हुआ देखा। रामानन्द ने जब पीपा का परिचय पाया तो कहा—तुम तो राजा हो। हम दरिद्रों और साधुओं में तुम्हारा क्या काम? तुम तो विलास में डूबे रहो, तुम्हें क्या मतलब कौन भूखा मरता है, किसपर अत्याचार होता है? जब कोई शत्रु हमला करे, उसके सामने सिर झुका दो, तुम्हारा तो महल बच जाएगा। हमें ऐसों की जरूरत नहीं, हमें तो वे चाहिएं जो सब कुछ छोड़कर लोक की सेवा करें।—तो बेटा! राजा पीपा ने यह सुना तो सन्नाटे में आ गया। वह चुपचाप लौट आया।'

'फिर तो बेकार रहा?'

'सुन तो सही। दूसरे दिन वह साधु के कपड़े पहनकर रामानन्द स्वामी के पास पहुंचा। उसके तो मन में लगन थी। वह पीछे कैसे हटता? रामानन्द स्वामी ने देखा तो मुंह विकृत करके कहा—कपड़ा बदल लेने से क्या मन भी बदल जाएगा? गरीबी को दूर करोगे? लोक के दुःख मिटाओगे? जाओ, जाओ। कुएं में गिर पड़ो, कुएं में।'

'हाय !'

'पीपा कुए में गिरने चला तो स्वामी रामानन्द के चेलों ने रोक लिया। रामानन्द प्रसन्न हो गए। बोले—अच्छा, मैं तुझे अपना शिष्य बनाऊंगा।'

'फिर तो राजा बड़ा प्रसन्न हुआ होगा ?'

'बेटा ! राजा जब शिष्य बना तो रामानन्द स्वामी के हाथ में एक बल आ गया।'

'क्यों ?'

'स्वामी रामानन्द का आन्दोलन केवल दरिद्र और नीच कही जाने वाली जुलाहा और चमार जैसी जातियों को ही इकट्ठा कर सका था। अब उसमें ऊंचे कुल के लोग भी आने लगे। धीरे-धीरे स्वामी रामानन्द ने उत्तर भारत में हलचल मचा दी। उस समय लोदी लोग बादशाह थे। वे प्रजा पर खूब अत्याचार करते थे। उस समय के हिन्दू राजा भी प्रजा को सताते थे। वे आपस में बेकार लड़ते थे। गरीबों को बचाने वाला कोई नहीं था। तब पीपा ने बड़े-बड़े भंडारे करने प्रारम्भ किए और स्वयं उसने सारी विलासिता का त्याग कर दिया और प्रजा की सेवा करने लगा।'

'फिर ?'

'एक बार स्वामी रामानन्द अपने चेले कबीर, रैदास इत्यादि के साथ गागरोन गढ़ आए।'

'अच्छा ?'

'हां, तब राजा भी साधु हो गया। लेकिन उसके ग्यारह रानियां थीं।'

'मां, ग्यारह थीं ?'

'हां, ग्यारह तो वे थीं जो राज में ही रह गईं। एक बारहवीं थी, जिसका नाम था सीता। वह भी साधु बनने के लिए हठ कर गई।'

'तब क्या हुआ ?'

'स्वामी रामानन्द ने देखा तो कहा—रानी ! साधु बनकर संसार का उपकार करते हुए घूमना सहज नहीं है। तुम स्त्री हो, विलास में पली हो—वह बोली—महाराज! स्त्री क्या केवल विलास के लिए जन्मी है ? इस लोक का आधा दुःख तो स्त्रियां ही उठाती हैं।—स्वामी रामानन्द ने कहा—साधुवेश धारण करने से क्या होगा ? यह समझो कि तुम नंगी हो रही हो।

––रानी ने कहा––मैं ऐसे काम के लिए संसार के सामने नंगी होकर आ सकती हूं। प्रजा तो मेरी पुत्री के समान ही है।'

'खूब कहा मां।'

'तब वह साधु दल निकला। रानी भी चली। बेटा, उत्तर भारत में हिलोर-सी आ गई। वे लोग प्रजा को जगाते फिरते थे। जाति-पांति के कठोर बन्धनों को तोड़ते थे। सब जाति के भक्त एक साथ खाते थे। वे मन्दिरों को तोड़ने नहीं देते थे। मन्दिर तोड़ने को आने वाले मुसलमान सिपाहियों को वे समझाते थे कि तुम व्यर्थ क्यों घृणा के बीज बोते हो। तुम भी मनुष्य हो, हम भी मनुष्य हैं। वे हिन्दुओं से कहते थे कि व्यर्थ ही मुसलमानों से घृणा मत करो। अपनी संस्कृति की रक्षा करो। इस प्रकार स्वामी रामानन्द ने उत्तर भारत को एक नया जीवन दिया।'

'मां! स्कूल में तो पंडित जी ने कहा था कि वे केवल भक्त थे। तू तो कुछ और बता रही है।'

'भक्त थे बेटा! तभी तो दूसरों के दुःख से दुःखी होते थे। तभी तो वे औरों के काम करते थे। उन्होंने उस समय प्रजा के कष्टों को देखा था। वे जानते थे कि जाति-बंधन के भीतर जकड़ा हुआ भारतवर्ष कभी भी अपना बचाव नहीं कर सकता था। वे मुसलमान शासकों से कहते थे कि धर्म के नाम पर गरीबों को चूसते हो? क्या धर्म कभी घृणा करना सिखा सकता है? धर्म तो मनुष्य से मनुष्य को एक करने वाली चीज़ है।'

'ठीक है मां! तभी तो लोगों ने उनकी बात मानी।

गायक का तराना

गीत के बोलों में माधुरी है, प्राणों का आवेग है। मेरी तन्मयता में विश्वासों के तार झनझनाकर जीवन की अमर रागिनी उठा रहे हैं।

यह कौन गा रहा?

यह रैदास चमार है।

वह गा रहा है:

जाति भी ओछी, करम भी ओछा,
ओछा किसब हमारा।

नीचे से प्रभु ऊँच कियो है,
कह रैदास चमारा।

काशी की गलियों में रामानन्द की हुंकार गूंज रही है, 'कौन कहता है कि मनुष्य नीच है। ओ सोने वालो! आंख खोलकर देखो, जिन तत्वों के तुम बने हो, उन्हीं तत्वों के सब बने हुए हैं।' रैदास पीछे खड़ा है। वह कहता है, 'हे प्रभु! तुम चन्दन हो, हम पानी हैं। तुम्हारी ही सुगन्धि हमारे अंग-अंग में बस रही है। हे प्रभु! तुम बादल हो और हम मोर हैं, तुम चन्दा हो, हम तुम्हें देखने वाले चकोर हैं। हे प्रभु! तुम स्वामी हो, हम दास हैं।'

दास! हां दास! 'वह' स्वामी है। वह सबका स्वामी है। प्रतिध्वनि उठती है कि इस पृथ्वी पर सब समान हैं, आओ हम सब 'उसकी' अर्चना करें।

गीत के बोलों में आश्वासन है, प्राणों की निश्छलता है। मेरी समर्पणमयी चेतना के तार झनझनाकर सौहार्द्र की अविनश्वर रागिनी उठा रहे हैं।

रैदास कहता है, 'स्वामी! फिर यह जो संसार में स्वामी बने घूमते हैं, हमें कुचलते हैं, कोई छूने से डरता है, हमसे घृणा करता है, कोई हमें काफिर कहकर गालियां देता है, यह कौन है? क्या यह सब भी प्रभु के सामने हमारी ही भांति दास हैं?'

स्वामी रामानन्द का गर्जन उठता है, 'हां, यह सब तुम्हारे स्वामी नहीं। यह अपने अहंकार और अज्ञान के कारण तुम्हें कुचलते हैं। यह तो स्वयं दास हैं। स्वामी के सामने कोई भेद नहीं। कोई बन्धन नहीं।'

रैदास का झोंपड़ा अब मुस्करा रहा है। उसका हाथ अब तेजी से जूता गांठता है। उसकी पत्नी मुस्कराकर रोटी सेंकती है। अब वे डरते नहीं। रैदास के झोंपड़े में भगवान की मूर्ति रखी है।

ब्राह्मण कहता है, 'नीच! तू मूर्ति को अपवित्र कर रहा है?' मुसलमान कहता है, 'काफिर! तू बुतपरस्त है!'

रैदास कहता है, 'जैसे तुम ब्राह्मण वैसा मैं मनुष्य। और मुसलमान, तू मुझे बुतपरस्त कहकर चाहता है मैं तेरा दास बनूं? नहीं। भगवान तो एक है। मन्दिर में भगवान बन्दी नहीं है। मूर्ति में परमात्मा बन्दी नहीं है।

न मैं तेरी सुनूं, न उसकी।'

'एक दिन मेरे पिता रघु ने मुझे बिना एक पैसा दिए घर से निकाला था क्योंकि मैं डरता नहीं था। उन्हें डर था कि मेरे कारण घर पर विपत्ति न आ जाए। लेकिन मैं भीख नहीं मांगता। मेरे हाथ में यह जूता सीने का लोहे का औजार है। यह पारस पत्थर है। यह मिट्टी को सोना बनाता है। मेरे गुरु रामानन्द ने महाविद्वान मुसलमान पण्डितों से शास्त्रार्थ करके प्रमाणित किया है कि कोई भी धर्म दूसरे को कुचल नहीं सकता।'

गीत के बोलों में सत्य है। पुराणों का धर्म है। मेरी आत्मनिहिति में प्रेम के अमर तार झनझनाकर शाश्वत शान्ति की झनकार उठा रहे हैं।

धन्ना जाट गा रहा है :

'गुरु ने ज्ञानधन से मुझे भर दिया है, मैं ध्यानमग्न हूं। 'वह' तो एक ही है। चाहे उसका नाम कोई भी हो। अब मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता। रामानन्द स्वामी ने मुझे बताया है।'

रैदास की मां घुरबिनिया कहती है, क्यों रे कागा कैसे हंस हो गया? मेरी नीच कोख का जन्मा रैदास कैसे इतना बड़ा आदमी हो गया?' और रैदास कहता है, 'गोविन्द अचल है, अरूप है, अजन्मा है, निर्भय है, असीम है, अलख है, तर्क में समाया हुआ नहीं है, हरि सबमें है, सब कुछ हरि में है, मेरा राम वह राम नहीं, जो तुम्हारी मूर्ति में बन्द है, तभी मैं स्वतन्त्र हूं। न मेरे पास धन है, न ज्ञान। मै तो पापी हूं, गरीब हूं। मेरा राम, मेरा राम ही कादिर है। मेरा साहिब मुझे दीदार देगा।' और अब सुनो...कौन गा रहा है......किसकी सुरीली आवाज दिगंतों को भेदकर गूंज रही है...

तेरा कोई नहिं रोकणहार मगन होई मीरा चली।
लाज शरम कुल की मर्यादा, सिर से दूर करी,
मान अपमान दोई धर पटके, निकसी हूँ ज्ञान गली।

वह ज्ञान गली में निकली तो उस मेवाड़ की रानी ने झूठे बन्धन तोड़ दिए। उसने चमार रैदास के पांवों पर शीश झुकाकर कहा, 'तू मेरा गुरु बन। आज मेवाड़ का राणा क्रुद्ध है, पर मेरा पति तो लोक का रक्षक है, तू नीच कहाने वाले, तुझमें ही तो मेरा पति रहता है, तू मेरा गुरु बन!'

मीरा गिरधर हाथ बिकानी लोग कहै बिगड़ी।

'गुरुदेव जोगी बनकर संसार से विमुख होने से क्या लाभ ! क्यों नहीं संसार के सुन्दर स्वामी में मन लगाया जाए ? मेरा स्वामी तो गौओं को चराने वाला नन्दलाल है। वह तो सबका है।'

रैदास कहता है, 'रानी, मैं चमार हूं, तू रजपूतनी।'

मीरा हंसकर कहती है, 'रे मेरे अविनाशी को जानने वाले ! मुझे न ठग। मैं तो महल छोड़ आई।'

मीरा बड़े-बड़े विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित करती है। मीरा का प्रेम-राग देश में नई चेतना भर रहा है। उसने पर्दा तोड़ दिया। स्त्रियों को स्वतन्त्र कर दिया। वह मस्त होकर, भक्ति में तल्लीन होकर वृन्दावन के पथों पर नाच रही है। राजपूत क्रुद्ध है, परन्तु मीरा निर्भय है।

वृन्दावन का जीव गोस्वामी मीरा से कहलवाता है, 'मैं किसी स्त्री से नहीं मिलता।' मीरा कहती है, 'लोक में पुरुष तो कृष्ण है, वही तो परमात्मा है, हम सब तो स्त्रियां हैं।'

जीव गोस्वामी का बन्धन खण्डित हो जाता है, वह मीरा के पांव पड़ता है।

मीरा गाती है :

म्हारो जनम मरन को साथी थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती,
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, धूनत मेरी छाती,
ऊँची चढ़-चढ़ पन्थ निहारूँ, रोम-रोम अँखिया राती,
यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुलरा न्याती,
दोउ कर जोड्याँ अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती,

गीत गूंज रहा है।

'सुन रहे हो !'

गीत के बोलों में वेदना है, प्राणों का संवेदन है। मेरे चिरन्तन स्नेह में उल्लास के तार झनझनाकर गौरव की अमर रागिनी उठा रहे हैं।

शीशा देखने वाला

रूप ने कहा, 'मैं नवाब हुसैन खां से नहीं डरता। मैं कभी दबीरखास था। लेकिन मैं मुसलमान हूं तो क्या, मैं अपनी इच्छा के बिना लोगों पर

जुल्म न करूं।'

उसके भाई सनातन ने कहा, 'महाप्रभु चैतन्य हमारे गुरु हैं। हम भगवान के नाम पर कभी किसीपर अत्याचार नहीं कर सकते। नवाब को धन चाहिए तो वसूल करे। मैं साकर मल्लिक नहीं रहा—मैं सनातन हूं।'

काजी ने सुना। उसी समय एक मुसलमान निकला। वह कहता जा रहा था, 'मैं अपने गुरु से बहुत बड़ा हूं, केवल आयु में। मेरा गुरु चैतन्य ही मेरा पथ-प्रदर्शक है।'

काजी चिल्लाया, 'पकड़ लो काफिर को।'

'काफिर ?' उसने कहा, 'कौन है काफिर! मेरा गुरु सैकड़ों उलेमानों से तर्क कर चुका है। उसको कोई बन्धन नहीं। मैं तो उसका सेवक हूं। नित्यानन्द ब्राह्मण, अद्वैत प्रभु, रघुनाथदास, रामानन्द कायस्थ, सब एक जाति के हो गए हैं। रूप, सनातन और मैं मुसलमान भी उसके शिष्य हैं। तुम झूठे बन्धन बांधते हो। ब्राह्मण झूठे बन्धन बांधता है। विष्णु के भक्तों की कोई जाति नहीं, भक्ति ही होती है। तुम हमको हमारे ही लोगों से घृणा करना सिखाते हो।'

काजी ने कहा, 'लेकिन तू अल्लाह का नाम नहीं लेता!'

'मैं हरि-हरि कहता तो हूं।'

'पर हरि तो काफिरों का खुदा है।'

'तो क्या खुदा भी काफिर होता है? क्या किसी एक लफ्ज में उसका नाम लेने से ही इन्सान मुसलमान होता है?'

काजी चिल्ला उठा, 'कलमा पढ़ो, वर्ना तुझे सज़ा दी जाएगी।'

मुसलमान ने मुस्कराकर कहा, 'शरीर के टुकड़े-टुकड़े करवा दो। पर हरिनाम मैं कैसे छोड़ सकूंगा?'

काजी ने नवाब को खबर दी।

नवाब ने मुसलमान को बंधवाया और सिपाही उसे कोड़े मारते हुए बाज़ार में खींच ले चले।

भीड़ एकत्र हो गई।

लोग चिल्लाए, 'क्यों मारते हो? क्यों मारते हो?'

एक ने कहा, 'अच्छा है, मुसलमानों का राज है। मुसलमान को मुसल-

मान मार रहा है, हम क्यों बोलें।'

किन्तु उसी समय कुछ किसानों को बांधकर सिपाही खींचे ला रहे थे।

मुसलमान चिल्लाया, 'तुम्हें क्यों बांधे लिए जा रहे हैं ?'

किसान ने कहा, 'जजिया नहीं दिया।'

मुसलमान ने कहा, 'जजिया ?'

किसान ने कहा, 'अरे तुम मुसलमान हो। तुम सब ही अत्याचारी हो। कहां से लाएं ? कहते हैं, मुसलमान हो जाओ तो माफ कर देंगे।'

मुसलमान चिल्लाया, 'यह झूठ है। मैं मुसलमान हूं। देखो मैं कहता हूं कि मैं मुसलमान हूं। पर मैं हरिनाम लेता हूं, तो ये कहते हैं कि हरि नहीं, खुदा कहो। क्या हरिनाम का अर्थ खुदा नहीं है ? हरि बोल ! हरि बोल !'

भीड़ पास आ गई।

सिपाही उसपर कोड़े बरसाने लगे।

मुसलमान चिल्लाया, 'अरे कोड़े खाते जाओ, लेकिन मुंह से हरि-हरि चिल्लाते चलो।'

उसने मुड़कर कहा, 'जजिया मत दो। वह धन इस्लाम के पास नहीं जाता, इन लोगों के पास जाता है। ये अपने जैसे लुटेरों की फौज बनाते हैं।'

सिपाही कोड़े मारकर उस मुसलमान को खींचते हुए ले चले। वह 'हरि-हरि,' चिल्लाता रहा। प्रजा भी 'हरि-हरि' चिल्लाने लगी। सारे नगर में कोलाहल मचने लगा। ग्राम-ग्राम गूंजने लगे।

तीन दिन बीत गए।

रूप और सनातन एक छोटे-से घर के सामने खड़े थे। उन्होंने मुड़कर चैतन्य महाप्रभु की ओर देखा। वह गोरे रंग का संन्यासी यात्रा से लौटकर आया था। उसने काशी के पण्डितों के दुरभिमान को तोड़कर जातिप्रथा को ढीला कर दिया था। उसने जगन्नाथपुरी के वामाचारी मंदिर को शुद्ध किया था और यौन साधनाएं हटाकर मनुष्य को सहज प्रेम और भक्ति का संदेश दिया था।

भीतर से एक लड़का निकलकर आया।

'क्या हाल है ?' रूप ने पूछा।

चैतन्य को भूख लगी थी। वे भीतर गए। एक स्त्री ने भीतर से कुछ खाने को भिजवाया। चैतन्य ने भिक्षा ग्रहण की।

चैतन्य ने कहा, 'भक्ति का अर्थ कायरता नहीं।'

वृद्ध मुसलमान बाहर आया।

उसके शरीर पर कोड़ों के दाग थे। उन्होंने मारते-मारते बेहोश कर दिया था, फिर मरा जानकर वे उसे नदी में फेंक आए थे। लेकिन वह किसी प्रकार तैर कर आ गया था। इस समय वह बहुत ही निर्बल हो रहा था।

एक दिन चैतन्य ने अपना विद्रोह दिखाया था। उसकी निष्ठा और निर्भयता देखकर अत्याचार करने वाले दबीरखास और साकर मल्लिक ने सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। आज उसीकी ओर चैतन्य का इंगित देखकर वे सिर झुका गए।

चैतन्य ने मुसलमान वृद्ध को वक्ष के पास खींचकर कहा, 'वत्स! मन में भय तो नहीं है?'

'नहीं गुरुदेव।'

'उन्होंने तुम्हें बहुत मारा?'

'मारकर भी वे जीते नहीं।'

चैतन्य देखते रहे।

'तुम्हें उन्होंने नदी में फेंक दिया। हरिनाम लेना भी वे रोकते हैं।'

वृद्ध मुसलमान हंसा, 'हरि काफिर खुदा का नाम है।'

वे भी मुस्करा पड़े।

रात को वृद्ध कराहने लगा।

रूप ने कहा, 'आचार्य!'

'क्या है?'

'मुझे लगता है कि······'

'हूं······'चैतन्य ने कहा

प्रातःकाल वृद्ध मर गया।

भीड़ एकत्र हो गई। घर के सामने हिन्दू और मुसलमान दोनों एकत्र थे।

'तुम क्यों आए हो?' एक हिन्दू ने कहा।

'मुसलमान मर गया है। वह हरिनाम लेने से क्या मुसलमान नहीं

रहा ? काजी झूठा है। पण्डित झूठा है। हरि और खुदा एक ही के तो दो नाम हैं।'

'वह मर गया है' चैतन्य ने कहा, 'अब वह मिट्टी है। ऐसा मुसलमान धन्य है। वह परम वैष्णव है। मैं उसकी दाहक्रिया करूंगा।'

संन्यासी दाह दे! और वह भी एक मुसलमान को?

अपार भीड़ एकत्र हो रही थी। भीड़ चिल्ला रही थी, 'हरि बोल! हरि बोल!'

काजी ने सुना तो सिपाहियों की ओर देखकर कहा, 'काफिर? इन्हें सज़ा दो।'

लेकिन हठात् सिपाही चिल्ला उठे, 'नहीं। हरि और खुदा एक ही तो हैं। किसलिए सज़ा दी जाए?'

काजी ने सुना तो गुस्से से ओठ चबाने की बजाय दाढ़ी ही चबा गया। परन्तु प्रजा एक स्वर से चिल्ला रही थी, 'हरि बोल! हरि बोल!'

हिन्दुस्तान की डायरी

काशी की एक मस्जिद पर एक मुल्ला खड़ा होकर अजान देने लगा। उसकी आवाज लहराती हुई आकाश में गूंज उठी। मुसलमान लोग मस्जिद की ओर आने लगे। एक जुलाहा पथ पर खड़ा हंसने लगा। भीड़ एकत्र हो गई। मुल्ला चिल्लाने लगा, 'ऐ काफिर! तू क्यों हंसता है? क्या तुझे मरने का डर नहीं?'

'मौत का डर मुझे क्यों हो?' जुलाहे ने हंसकर कहा। 'तू क्यों चिल्ला रहा था? क्या तेरा खुदा बहरा हो गया है?'

भीड़ में कोलाहल होने लगा। मुल्ला आगे बढ़ा, मगर भीड़ के कारण आगे नहीं जा सका।

उसी शाम को वह जुलाहा एक मन्दिर के सामने से जा रहा था। लोग मूर्ति के सामने भेंट चढ़ा रहे थे। वह खड़ा होकर पुकारने लगा, 'देखो, देखो कैसा ढोंग हो रहा है। बेकार पैसा बरबाद हो रहा है और महन्त का ढकोसला चल रहा है।'

एक पुजारी ने कहा, 'अरे जुलाहे! तू नीच जात! तू यहां तक कैसे आ गया?'

जुलाहे ने कहा, 'ऊंची और नीची जात क्या हैं भाई ? जिस राह से मैं दुनिया में आया, अगर तू ऊंची जात का है तो तू उसी तरह से क्यों आया ?'

भीड़ उच्छृंखल हो रही थी।

महंत चिल्ला उठा, 'यह पापी है, नीच है।'

जुलाहे ने कहा, 'मैं नीच हूं, पापी हूं। पर अगर पत्थर पूजने से हरि मिलते हैं, तो चक्की के पाट क्यों नहीं पूजने चाहिएं, जो कम से कम अन्न तो देते हैं।'

भीड़ ठठाकर हंसी।

'अलख निरंजन!' बाबा चिमटा फटकारते हुए बढ़े, वे नाथ जोगी थे। उन्होंने कहा, 'बच्चा! हम बाबा हैं। हमने काम को जला दिया है, भिक्षा दो।'

जुलाहे ने कहा, 'बाबा, काम जलाकर हिजड़े हो गए! काम-धाम क्यों नहीं करते ? मेहनत करके क्यों नहीं खाते-कमाते ?'

'यह कौन था जी ?'

'यह कबीर था।'

'तो क्या यह गृहस्थ था ?'

'हां, वह श्रमजीवी गृहस्थ था।'

'अच्छा! क्या उन दिनों और भी कोई महत्वपूर्ण बात हुई ?'

'उन दिनों बहलोल लोदी शासन करता था। मैं तुमसे जिस व्यक्ति की कहानी सुनाने जा रहा हूं, वह लम्बी आयु का व्यक्ति था। जिस तरह चैतन्य ने अनेक बादशाह देखे, उसी भांति इसने भी बहलोल के बाद सिकन्दर शाह का राज देखा। सिकन्दर की मां सुनारिन थी। हिन्दू थी। वह स्वयं भी बड़ा धर्मान्ध था। उसके समय में कट्टर मुल्ला वर्ग का बहुत प्राधान्य था। क्योंकि चारों तरफ आग सुलग रही थी। वह अमूमन मन्दिरों को तुड़वाया करता था। उसके बाद इब्राहीम लोदी शासक हुआ, जिसको एक विदेशी मुगल बाबर ने आकर पराजित किया। इस पूरे दौरान में यह व्यक्ति जीवित रहा।'

'मुझे बताओ वह कौन था।'

मक्का शरीफ में एक हिंदू काबे की तरफ पैर करके सो रहा था। कुछ देर तक मुसलमान देखते रहे।

फिर एक ने बढ़कर कहा, 'ऐ देखता नहीं। कैसे सो रहा है?'

कई अरब आ गए।

सोने वाले ने निश्चिंत मुद्रा में पड़े-पड़े पूछा, 'क्या है भाई?'

'अल्लाह के घर की तरफ पांव करके सो रहा है?'

लेटे हुए व्यक्ति ने कहा, 'मेरे पांव उधर कर दो जिधर अल्लाह का घर न हो।'

सब लोग ठठाकर हंस पड़े। डांटनेवाला खिसियाकर चुप रह गया।

वह नानक था।

वह पाक पटन के बाबा फरीद की दरगाह शरीफ पर गया था, पानीपत में शेख शरफ से मिला था। काश्मीर में उसने पंडित ब्रह्मदास से भेंट की थी।

'तू कौन है?' उस व्यक्ति ने पूछा।

नानक ने कहा, 'मैं कौन हूं? न मैं हिंदू हूं, न मैं मुसलमान हूं। मैं तो मिट्टी का पुतला हूं। न पूजा-पाठ करता हूं, न रोजा-नमाज रखता हूं। यह सब व्यर्थ हैं। तुम जानते हो? मुसलमान होना बहुत कठिन है। अहंकार और घमंड को छोड़कर अपने गुरुओं की आज्ञा माने, जीवन-मरण की चिंता न करे, सच्चे हृदय से भगवान की इच्छा के अनुसार जीवन बिताए, सब मनुष्यों पर दया करे, तब ही वह सच्चा मुसलमान बनेगा।'

और नानक अपने साथ मरदाना नामक गायक को लेकर पश्चिम में मक्का, पूर्व में कामरूप, दक्षिण में रामेश्वरम् और उत्तर में काश्मीर तक घूमता रहा।

एक बार वह एमनाबाद में गया। उस दिन एक धनी व्यक्ति ने नानक को खाने का निमन्त्रण दिया, किन्तु नानक गरीब बढ़ई लालो के घर खाने पहुंचा। विद्रोह हो उठा। लोग इकट्ठे हो गए। उन्होंने पुकारकर कहा, 'नानक, तू शूद्र के घर खा रहा है?'

'हां', नानक ने कहा 'सब मनुष्य तो बराबर हैं? क्या धर्म परस्पर ऊंच-नीच सिखाता है?'

धनी व्यक्ति ने उंगली उठाकर कहा, 'इसने मेरा निमन्त्रण ठुकराया है। यह इस नीच बढ़ई की रोटी खा रहा है।'

'हां', नानक ने कहा, 'मैं यहीं खाऊंगा ! क्योंकि इसकी रोटी में इंसान की मेहनत का फल है और तू धनी है, तेरी दौलत का नशा तुझपर सवार है, तेरी रोटी में से गरीबों का लहू टपकता है।'

जीवन के अन्तिम दिन आ गए थे।

नानक के अनेक शिष्य हो गए थे।

नानक ने एक समय, जब दौलतखां लोदी का सेवक था, तोशेखाने का रुपया गरीबों को लुटा दिया था। उसने अपनी दौलत भी गरीबों को बांट दी थी। उसके चारों ओर लोग चन्दा करके माल इकट्ठा करके बैठते, उन्हें नई चेतना दिखाई दे रही थी। नानक का योग्य शिष्य अंगद पास बैठा था। अन्न का लंगर खुला हुआ था।

इसी समय अनेक मुसलमान काजी आ गए। उनकी आज्ञा से सिपाहियों ने नानक को पकड़ लिया।

वे उसे खींच ले गए।

घोड़े पर विदेशी मुगल बाबर था। उसने तुर्की में पूछा, 'कौन है ?'

नानक ने तुर्की में उत्तर दिया, 'मैं हूं नानक।'

इसी समय दौलतखां लोदी ने घोड़ा बढ़ाकर बाबर से कहा, 'यह फकीर है।'

दौलतखां ने ही बाबर को निमन्त्रण देकर भारत बुलाया था और इब्राहीम लोदी को पराजित कराया था। उसकी बात सुनकर बाबर ने कहा, 'सच्चा फकीर है।'

दौलतखां ने कहा, 'एक दिन मैं नमाज पढ़ रहा था। जब नमाज खत्म करके उठा। इसने कहा—मालिक ने सुना नहीं—मैंने पूछा—क्या ?—इसने कहा—उसने नहीं सुना क्योंकि तुम अपने घोड़ों के बारे में सोचते हुए नमाज पढ़ रहे थे।'

बाबर ने कहा, 'शाबाश ! इसे छोड़ दो। इस मुल्क में ऐसे लोग भी रहते हैं। अगर मुझे मालूम होता तो मैं यहां इतनी बरबादी नहीं करता।'

चरवाहे की जिन्दगी से इतना ऊंचा उठनेवाला नानक शताब्दियों से

कुचली जाने वाली पंजाब की जनता का दुर्दमनीय साहस बनकर जन्मा था। उसकी आंखों की ओर देखकर बाबर सहम गया। उन आंखों में कितना गौरव था।

उसका पुत्र श्रीचन्द पीछे खड़ा था। तलवण्डी का मुसलमान मरदाना उसके पास खड़ा था, उसका मित्र था।

'ऐ फकीर !' बाबर ने कहा, 'तू मुसलमान है ?'

नानक ने कहा, 'नहीं ! मेरे भगवान के सामने करोड़ों मुहम्मद, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और राम हाथ बांधे खड़े रहते हैं। उसकी न कोई जाति है, न वह बंधता है। वही तुझमें है, वही मुझमें है। वही एक हाकिम है।'

बाबर की खाक समझ में नहीं आई। भीड़ चिल्लाई, 'नानक की जय ! गुरु की जय !'

उस भीड़ में हिन्दू भी थे, मुसलमान भी।

बाबर ने दौलतखां की ओर मुड़कर देखा। दौलतखां ने इशारा किया। सिपाही नानक को वापस ले गए। बाबर ने कहा, 'क्या कहता था ?'

दौलतखां ने कहा, 'न वह हिन्दू है, न मुसलमान है।'

'तो फिर क्या है ?'

'पता नहीं। पर कहते हैं उसके पास कोई ताकत जरूर है।'

बाबर ने ध्यान नहीं दिया। नानक लौट चला। अंगद ने कहा, 'गुरुदेव हम कौन हैं ?'

नानक ने कहा, 'अंगद, भगवान स्वतन्त्र है, राम स्वयं अपना भाग्य और जाति-पांति की ऊंच-नीच नहीं मिटा सके, मैं किसी भी जाति का नहीं, मैं तो गुरु का शिष्य हूं।'

'शिष्य !'

अंगद ने कहा, 'सिक्ख, तो हम भी सिक्ख ही हैं।'

नानक मुस्करा दिया।

तस्वीर वाले का बयान

'यह एक आंख वाला आदमी कौन है ? बड़ा कुरूप है। इसके मुख पर चेचक के कितने दाग हैं।'

'आप इसे नहीं जानते ? यह मलिक मोहम्मद जायसी सूफी कवि है।'

'कब हुआ था यह ?'

'शेरशाह ने जब हुमायूं को निकाल दिया था तब यह पद्मावत लिख रहा था। यही था वह कवि जिसने मुसलमान होकर भी मुसलमान शासकों के लालच को उभाड़कर रखा, और हिन्दू और मुसलमान जनता को एक करने की कोशिश की। यह बड़ा निडर था। आप नहीं जानते कि यह कितना दिलेर था, कितना अच्छा आदमी था। यह अवध में रहता था। इसने फारसी में नहीं अवधी में कविता लिखी और किसानों को सुनाई। यह व्यक्ति घृणा से बहुत दूर था।'

'भई, तुमने तो बहुत कहा। लेकिन यह हुमायूं तो बाबर का ही बेटा था न ?'

'हां हुजूर ! तस्वीर लेंगे ?'

'ले लूंगा। यह बाहर से जितना बदसूरत है भीतर से उतना खबसूरत भी है।'

'और यह किसकी तस्वीर है ?'

'यह रामदास है।'

'रामदास कौन ?'

'यह सिक्खों का चौथा गुरु रामदास है।'

'गुरु है ?'

'यह बाज़ार में चने बेचा करता था। बाद में इसका ब्याह सिक्खों के गुरु अमरदास की लड़की से हुआ। अमरदास एक बावड़ी बनवाने लगा। उस समय ऊंच-नीच का भेद-भाव छोड़कर यह रामदास भी मजदूरों के साथ मिट्टी की टोकरियां भरने लगा। लोग नाराज हो गए। उन्होंने गुरु अमरदास से जाकर कहा—आपका दामाद उन नीच मजदूरों की तरह काम रहा है।'

'गुरु अमरदास ने कहा—भाइयो ! वह मिट्टी का टोकरा उठाए नहीं जा रहा, वह दीन-दुखी के राज्य का छत्र है।

'अमरदास अपने लंगर में सब जाति के लोगों को एक पांत में बैठाकर

खाना खिलाता था। उसके इस व्यवहार से क्रुद्ध होकर ब्राह्मण और खत्रियों ने बादशाह अकबर को लिखकर भेजा कि अमरदास धर्म भ्रष्ट कर रहा है। अमरदास ने रामदास को ही बादशाह के पास सफाई पेश करने को भेजा।

'रामदास ने बादशाह को ऊंच-नीच का भेद व्यर्थ कहकर समझाया। बादशाह चुप हो गया। इसी रामदास ने पंजाब के भटकते हुए हिन्दू सौदागरों को देखा। उसने देखा कि ईरानी लोगों के आतंक से हिन्दू व्यापारी दुःखी थे। उसने निर्भय होकर बावन तिजारतों के व्यापारियों का बाजार बसवाया। तब लोग रामदास को 'गुरु रामदास तारण तरणम्' कहने लगे। गुरु नानक के पुत्र श्रीचन्द ने उदासीन पंथ चलाया था। वह भी रामदास की विनम्रता देखकर झुक गया था। इसी रामदास का छोटा पुत्र अर्जुनदेव सिक्खों का पांचवां गुरु हुआ था। उसने अमृतसर में मंदिर बनवाया, हर सिक्ख की आमदनी में से १/१० का कर बांध दिया और मंदिर में चारों वर्णों के हिन्दू, मुसलमान, सब लोग भीतर जा सकते थे। इसके इस आंदोलन से उस समय के उच्च वर्ण के हिन्दू और मुसलमान विक्षुब्ध हो उठे। स्वयं अकबर को आना पड़ा।

अकबर ने सुना अर्जुनदेव गा रहा था :

कोई बोलै राम राम, कोई खुदा ही
कोई सेवै गुसइयां, कोई अल्लाहि।
कारण करम करीम।
किरपा धारि रहीम।
कोई न्हावै तीरथ, कोई हजि जाई,
कोई करै पूजा, कोई सिर नवाई।
कोई पढ़ै वेद, कोई कतेब।
कोई ओढ़ै नील, कोई सुफेद।
कोई कहै तुरकु, कोई कहै हिन्दू।
कोई बांधे भिसतु कोई सुर गिंदू।
कुछ नानक जिनि हुकम पछाना,
प्रभु साहिब का तिनि भेदु जाना।

'यह एक नई आवाज़ थी, जो मानवीय मूल्यों को एक नया रूप दे रही थी। इसमें लोक की वेदना का दुःखी स्वर था। वेदना सदैव दुःख नहीं बनती, दुःख तो वह व्यक्त होकर बनती है, अन्यथा घुटन बनकर रह जाती है। वह सोई हुई प्रजा का जागरण था।

'अकबर ने सुना। राजनीति के कूटनीतिज्ञ स्वरूप ने सुना। परन्तु यह लोकनीति थी। लोक का हित धर्म बन जाता है, इसमें स्वार्थ की प्रेरणा नहीं थी, अतः यह छंदमात्र नहीं था, यह गीत की आत्मा थी। इसमें मनुष्य के चिन्तन के नये आधारों का पुनर्मूल्यांकन किया गया था।

'अकबर के विशाल वैभव का पर्वत सूखा था। यह उसपर जीवन की निशानी बनकर एक घास की पत्ती उगी थी।

'अकबर चुप हो रहा। वह नहीं जानता था कि यह घास एक दिन सारे पर्वत में अपनी जड़ें घुसाकर उसपर छा जाएगी।'

अंगारों की चमक

उस घने और बीहड़ अंधेरे में पुरुष-स्वर उठा :

'जय हे···'

उस शब्द को सुनकर स्त्री-स्वर ने साथ दिया, 'जय हे···'

फिर यह शब्द मिल गए और गीत की ध्वनि उठने लगी, 'जय हे···'

उसी समय एक गम्भीर स्वर उठा, 'रोक दो यह संगीत। इसे गाने का अभी अधिकार नहीं मिला है, क्योंकि जब तक मातृभूमि पर विदेशी अत्याचारियों का कहीं भी अधिकार बाकी है, तबतक हम इसे स्वतंत्रता से नहीं गा सकते।'

गीत रुक गया। तुरही बजने लगी।

और उसी आवाज ने फिर कहा, 'प्रभात फूट रहा है। गुलामी का अंधेरा इस पवित्र भारतभूमि से दूर हुआ जा रहा है। लेकिन यह आखिरी धब्बा···गुलामी का आखिरी दस्तावेज़···जिसे चार सौ सत्तावन बरस से शहीदों का लहू धोता रहा है···मगर आज भी उसे धो नहीं सका···'

हिन्दुस्तान का नक्शा चमक उठा। उसमें एक ही धब्बा था।

आवाज़ ने फिर कहा, 'यह है गोआ, जिसकी धरती पर एक दिन आनंद

के गीत गाए जाते थे…'

छायाएं बंद हो गईं। दो नर्तक और एक नर्तकी नाचने लगे और आनंद का गीत सुनाई देने लगा :

आओ हे…

सुंदर सजनि अब, नयनों में रंग भर, सतरँग बादल की छाया में झूमें।
कलियों को भारे, खुशबू को झोंके, मंगल की रागिनि को आनंद चूमे।
धरती से खुशियाँ, फसलों से हँसियाँ, सागर की लहरों से मोती निकालें।
सावन सँजोएँ, फागुन निहोरें, हम स्नेह सरिता में हिलमिल नहा लें।

गीत समाप्त होता चला गया। उसकी प्रतिध्वनि में एक और गीत की ध्वनि पास आने लगी। वह गाना यूरोपीय भाषा में था, जिसे सुनकर नर्तक और नर्तकी रुक गए और चौंककर खड़े रह गए। समुद्री जहाज लहरों पर पास आने लगा।

आवाज ने कांपते हुए कहा, 'लुटेरे आ गए। मसाले के सौदागर… समुद्री डाकू…इंसानफरोश…आज़ादी को कुचलते हुए बढ़े आ रहे हैं… सरज़मीं के चिराग गुल हो गए…

तूफान बहने लगा। भगदड़ मच गई। आग धधक उठी और हाहाकार मच उठा। भयानक पंजों ने गुलामों को पकड़ लिया, और कठोर होंठों ने उनका रक्त चूसकर फेंक दिया। फिर कोड़े पड़ने लगे।

चारों ओर युद्ध ही युद्ध दिखाई देने लगा, और फिर धीरे-धीरे तुमुल कोलाहल एक उदास गीत में लय हो गया :

रो ले अरी अभागिन रो ले, अब तेरा श्रृंगार कहाँ
जहाँ दुधमुँहे किलक रहे थे बरस रहे अंगार वहाँ।
बँधे हाथ हैं जंजीरों से घर-घर अंधकार गहरा
और रक्त का प्यासा दानव बादल-सा सिर पर घहरा
गला घोंटती कठिन गुलामी चलते हैं कंकाल यहाँ
स्वतन्त्रता का ध्वज खण्डित है भीषण हाहाकार यहाँ।
बहने वाले अश्रु भूमि पर गिरकर अब सम्मान जगा
तेरी हस्ती में ज्वालामुखि बैठे हैं अब आँख लगा।

उठ ओ बंदी वीर ! गरज तू सिंहों का-सा गर्जन कर,
घुंघरू बन तूफान बजेंगे, उठ नव जीवन सर्जन कर···

और गुलाम ने कहा, 'तुम कोड़े मारते हो समुद्री लुटेरो ! और मारो ! और मारो ! तुमने धोखे से सामुरी के पांव चूमकर घुटने टेक-टेककर तिजारत के लिए कोठियां बनाई थीं, लेकिन फरेब और दगा से, कौम के गद्दारों को टुकड़े डालकर, तुमने भोले-भाले इन्सानों को लूटा। छुरियां चलाईं। एक हाथ में सलीब और दूसरे हाथ में तलवार लेकर तुमने ईसामसीह की शहादत पर थूका है। तुमने धरती से सोना उगाने वाले किसान की हड्डियों को चूसा है। तुमने हमारी तिजारत पर अपने जुल्मों का कफन ओढ़ाकर उसकी आखिरी सांसों की परवाह न करके, उसे ज़िंदा ही दफन कर दिया है। तुमने दौलत के लिए मंदिरों और मस्जिदों की ईंट से ईंट बजा दी। तुमने मां-बहिनों की अस्मत पर खूनी डाके डाले। तुमने इन्सान के ईमान को बेपनाह कर अपने जूतों से कुचल डाला है। लेकिन याद रखो। बादलों को मोती समझकर चुरा-चुराकर इकट्ठा करने वालो, उनमें धन नहीं। वह तो गुलामों की मेहनत का पसीना है, और उसमें बिजलियों की तरह कड़कने की ताकत है···'

आकाश में कहीं वज्र गरजा और ध्वनि उठी :

माँ तेरी सौगन्ध हमें है हथकड़ियाँ तड़काएँगे
हे सुहागिनी, हे रणचण्डी, तेरा दूध निभाएँगे···

गीत के निर्भय स्वर से पुर्तगाली सैनिक चिल्लाया, 'जल्लादो ? इसे ज़िंदा जला दो।'

किन्तु गुलाम हंस पड़ा। उसने कहा, 'तुम समझते हो कि मुझे जला देने से इस आजादी की आग को भी बुझा सकोगे ? यह याद रखो कि मेरी खाक उड़कर सारे हिन्दुस्तान पर छा जाएगी और तब जो ईमान की फसल उठेगी···उसमें दाने नहीं होंगे···लहू से सींचा हुआ लोहा होगा।'

वे उसे खींचकर ले गए। पुकारें उठने लगीं, 'लुटेरों को निकाल दो।' भयानक पगध्वनि से धरती थर्राने लगी। युद्ध के चीत्कारों से दिशाएं छा गईं।

और तब आवाज़ ने कहा, 'और इस तरह भारतमाता के नौनिहालों ने अपनी कुर्बानियां करके चौबीस बार इन हैवानी दरिंदों के खिलाफ बगा-

वत की लेकिन आपस की फूट से लहू आग नहीं बन सका'''और आज भी गुलामी का आखिरी धब्बा मां के आंचल पर मौजूद है।'

चारों ओर भीड़ छा गई और लोग चिल्लाने लगे, 'लेकिन अब यह नहीं रहेगा। जिसे अरब सागर की तूफानी लहरें भी नहीं धो सकीं, उसे यह वतन के दीवाने धोकर ही रहेंगे।'

और फिर अंधेरा छा गया। चारों ओर निस्तब्धता छा गई।

२

होटल के काउण्टर पर एक दूकानदार गहरे सोच में पड़ा हुआ कुछ लिख रहा था। सामने ही कुछ कुर्सियों पर बैठे दो-तीन आदमी मेज़ पर पत्ते डालते जुआ खेल रहे थे।

पहले जुआरी ने कहा, 'सौ ब्लाईंड'''

एक नर्तकी गाने लगी और उसके वासनामय नृत्य से होटल झमकने लगा'''और खेल चलता रहा'''

ए रे चाँदी की रातें, सोने के दिन'''
मेरी अल्हड़ जवानी हुई है नागिन'''
सारी धरती है प्याला, है समन्दर शराब
सारा जीवन है जूआ, जलजला है शबाब
डस पलट जाऊँगी मैं कसकती जलन
किसलिए जल रहा है जिन्दगी का चिराग़
आज भूलें सभी को, जगे ऐसी आग

गीत समाप्त हो गया। वेटर ने मेज़ पर शराब लाकर रख दी। हठात् एक जुआरी चिल्ला उठा, 'यह बेईमानी है'''

दूसरे ने अचकचाकर कहा, 'क्या कहा, बेईमानी !'

वेटर ने दुकानदार के पास जाकर चुपचाप कुछ फुसफुसाया। वह मुस्कराकर उठा और आकर कहने लगा, 'क्या हुआ दोस्तो, क्या हुआ ? डिसूज़ा के होटल में आज तक तो बेईमानी हुई नहीं।'

लेकिन पहला जुआरी पत्ते फेंककर चिल्लाया, 'सरासर लूट !'

दुकानदार ने कोट का कालर ठीक करते हुए कहा, 'यह लूट नहीं है भाई, यह खेल है। घोड़े पर चढ़ने वाला ही मैदाने जंग में गिरता है। जुआ

किस्मत का खेल है; कभी ऊपर, कभी नीचे ! उसमें गम कैसा ? डिसूज़ा के होटल में जो जीतता है वह लाखों का माल ढोकर ले जाता है और जो हार जाता है, उसे पुर्तगाल की सरकार यूरोप घूमने का टिकट देती है। है न दोनों हाथ चांदी ही चांदी !'

वह हंसा। पर हारा हुआ जुआरी चिल्लाया, 'जूए की भी एक ईमानदारी होती है। हमारे हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं होता।'

दूसरा जुआरी हंस पड़ा। उसने स्वर चिढ़ाकर कहा, 'तुम क्या जानोगे मोटा खद्दर पहनने वाले लोग ? हिन्दुस्तान में तुम्हें कपड़ा नहीं मिलता तो तुम सबेरे बम्बई से आते हो और चोरी से कपड़े सिलवाकर शाम को ऊपर से सूट पहनकर लौट जाते हो। तुम्हें वहां शराब नहीं मिलती तो तुम यहां आकर प्यास बुझाते हो। वहां तुम्हें औरत मुड़कर नहीं देखती, तो यहां आकर तुम रंगरेलियां मनाते हो। तुमको बकरी मारने में डर लगता है, और हम इस राज में आदमी को मारते नहीं डरते। हिन्दुस्तान ! और ईमानदारी !!'

सब ठठाकर हंस पड़े। पहला जुआरी चिढ़कर उठ खड़ा हुआ।

दूकानदार डिसूज़ा ने कहा, 'कहां जाते हो भाई। अभी तुमने बिल तो चुकाया ही नहीं ?'

जुआरी ने होंठ काटे। बोला, 'बिल ! कैसा बिल ! मेरे पास तो अब कुछ नहीं बचा।'

डिसूज़ा ने हंसकर कहा, 'अरे भाई ! अभी तो कलाई पर घड़ी बंधी है। कहते हो कि पास कुछ नहीं बचा ! अजब भिखारिन है कि चांदी की कटोरी में दूध मांगने निकली है।'

उसका स्वर कठोर होकर गूंजा, 'बेटर !'

बेटर ने झुककर कहा, 'जी ! हुक्म !'

डिसूज़ा ने सफेद आंखें चमकाकर कहा, 'इसे ले जाओ और पैसे वसूल कर लो।'

तब दो बेटरों ने उसे पकड़ लिया और ले चले। वह चिल्लाने लगा, 'तुम लुटेरे हो ! बदमाश और धोखेबाज़ हो ! यह होटल नहीं है, यह गोआ ही पुर्तगालियों के व्यभिचार का एक आतंक भरा अड्डा है।'

लेकिन वेटर उसे सबकी हंसियों के बीच खींचकर ले ही गए।

दूसरे जुआरी ने डिसूज़ा से कहा, 'वाह उस्ताद ! कमाल कर दिया ! लेकिन अब अगर वह पुलिस में चला गया तो !'

डिसूज़ा ने गर्व से कहा, 'पुलिस ! गोआ की पुलिस ! और मुझे पकड़ेगी। पुर्तगाल की सल्तनत क्या अंगरेजी सल्तनत है जो इन नंगों से दब गई ? अगर डिसूज़ा इन बन्दरघुड़कियों से डरने लगे तो उसका काम कैसे चले। चार सौ सत्तावन साल से खूंटा गड़ा है। उसमें बड़े-बड़े गधे बांधकर सीधे कर दिए गए। मुगल-सल्तनत बनी और उखड़ गई। अंगरेज़ आए और चले गए, लेकिन जानते हो ! गोआ हिन्दुस्तान का हिस्सा नहीं, पुर्तगाल का हिस्सा है।'

तीसरा जुआरी सुनता रहा। फिर उसने कहा, 'लोग कहते हैं कि किसी का कान पकड़ लेने से वह अपने बदन का हिस्सा नहीं बन जाता। सत्याग्रह होने वाला है।'

डिसूज़ा ने तीखे स्वर से कहा, 'आज से चार सौ चालीस साल पहले बीजापुर के सुलतान यूसुफ आदिलशाह की सल्तनत में बसे गोआ में जिस दिन एडमिरल अलफासो अल्बुकर्क ने पांव रखे थे, उस दिन गोआ में एशिया के चौबीस मुल्कों के व्यापारी जहाज़ खड़े थे। अल्बुकर्क ने उन्हें समन्दर में डुबाकर शहर में आग लगा दी थी और पांच हज़ार औरतों, मर्दों, बच्चों को ज़िन्दा जला दिया था। तीन दिन के कत्लेआम के बाद सैकड़ों देसी लोगों को गुलामों की तरह बांधकर परदेसों में ले जाकर बेच दिया था। उन्होंने मस्जिद तोड़कर कैथराइन गिरजा बनाया, और वासुदेव मन्दिर को धूल में मिलाकर रोज़मैगोज़ चर्च खड़ा किया। और पुर्तगाल की तलवार की धार पर कांपते हुए गोआ वालों को ज़बर्दस्ती ईसाई बनाया।'

दूसरे जुआरी ने भक्ति से सलीब का चिह्न बनाया।

डिसूज़ा ने गर्व से कहा, 'यह है गोआ की शान। पुर्तगालियों की हुकूमत यहां सूरज बनकर जगमगाती है। अगर हिन्दुस्तान पुर्तगाल पर हाथ डालेगा तो वे हाथ काट डाले जाएंगे।'

बिखरे बाल, माथे पर रक्त की लीक, लुटा हुआ, फटेहाल, पिटा

हुआ, खूनी आंखों से घूरता पहला जुआरी लौट आया। उसने डिसूज़ा से चिल्लाकर कहा, 'तूने मुझे लुटवा दिया! कमीने कुत्ते! हम तुझे और तेरे पुर्तगाल को धूल में मिलाकर रहेंगे! तू! हिन्दुस्तान के गद्दार!'

डिसूज़ा ने हंसकर कहा, 'आ मेरे शराबी जुआरी देशभक्त!'

जुआरी ने अपना सिर शर्म से पीटकर कहा, 'हां, मैं नीच हूं, कमीना हूं। तुम्हारे दलालों ने मुझे एक दिन में करोड़पति बनने का झूठा सपना दिखाकर यहां भेजा था। लेकिन गोआ! यह एक बहुत बड़े पैमाने पर बसा हुआ जूए का अड्डा है, यहां पाप अपना मुंह खोलकर पुकार रहा है। तुमने यहां अस्मत लुटवाई है। मैं देश जाकर पुकार-पुकारकर कहूंगा कि जनता यहां भयानक दरिन्दों के नीचे कुचली पड़ी है।'

डिसूज़ा की आंखें कठोर हो गईं। उसने कहा, 'क्या करेगा?'

उसके इशारे पर वेटरों ने उसे पकड़ लिया। तब उसने एक रहस्यमय इशारा करके कहा, 'ले जाओ इसे। होशियारी से। किनारे पहुंचा दो।'

जुआरी चिल्लाता रहा, 'मुझे छोड़ दो, छोड़ दो मुझे······'

किन्तु वेटर उसे फिर खींच ले गए।

दूसरे जुआरी ने हकलाकर पूछा, 'तो उस्ताद? क्या···वह···'

डिसूज़ा मुस्कराया। बोला नहीं। फिर उसने पुकारा, 'रूबी!'

आवाज़ सुनाई दी, 'बॉस!'

डिसूज़ा ने पुकारा, 'डान्स!'

बाजे बजने लगे।

दूसरे जुआरी ने कहा, 'हमारे लिए क्या हुक्म है?'

डिसूज़ा जैसे चौंका। पूछा, 'वह लड़की क्या हुई!'

तीसरे जुआरी ने कहा, 'उसे क्या करना होगा?'

डिसूज़ा ने कहा, 'उसे लाने से व्यापार बढ़ेगा, होटल चमकेगा।'

जुआरियों ने सिर हिलाया।

वे चले गए। डिसूज़ा एक कुर्सी पर बैठ गया। हल्का गीत चलने लगा था। उदास-सी एक युवती आई और उसके पास ही पड़ी कुर्सी पर बैठ गई।

डिसूज़ा ने देखा और कहा, 'क्या बात है रूबी?'

रूबी के उदास मुख पर एक ज़बर्दस्ती की हंसी छा गई। उसने कहा, 'कुछ नहीं बॉस !'

अभी वह बात समाप्त भी नहीं कर सकी थी कि शराब के नशे में लाल आंखों से घूरता एक कठोर व्यक्ति घबराया-सा सामने आ खड़ा हुआ। डिसूज़ा चौंका। कहा, 'कौन ?'

वह उठ पड़ा और बोला, 'सिल्वा ! क्या हुआ ?'

सिल्वा ने कहा, 'मास्टर, गज़ब हो गया !'

डिसूजा समझा नहीं। पूछा, 'बात क्या हुई ?'

सिल्वा ने जल्दी-जल्दी कहा, 'हमने सब ठीक कर दिया था। आज सात नावें सोना छिपाकर बंबई पोर्ट की तरफ घुसा दी थीं। चार नावों में शराब थी। लेकिन बंबई की पुलिस ने घेर लिया।'

डिसूज़ा ने तड़पकर कहा, 'घेर लिया ? तुमने गोली नहीं चलाई ?'

सिल्वा ने कहा, 'चलाई मास्टर ! हमारे तीन आदमी मारे गए।'

डिसूज़ा के नेत्र कुछ फटे। पूछा, 'और लाशें कहां हैं ?'

फिर जैसे वह सुस्थिर हो गया। उसने उसका हाथ झटककर कहा, 'बेवकूफ ! चल मेरे साथ। लाखों का नुकसान हो गया। आज तक डिसूज़ा का दल नहीं पकड़ा गया !!'

रूबी ने टोका, 'कहां बॉस ?'

डिसूजा झल्ला गया। उसने पूछा, 'तू कौन है पूछने वाली ? ध्यान रहे। मैं जाता हूं। अगर यहां पुलिस आए तो ख़ातिर में कमी न करना।'

और वह सिल्वा की बांह पकड़कर खींच ले चला। रूबी उठी। चारों ओर उसकी चौकन्नी दृष्टि घूम गई। वह भीतर के कमरे में चली गई। भीतर का गीत फिर कुछ तेज़ हो गया। कुछ ही देर में रूबी पहले जुआरी के साथ लौट आई। वह घबराया हुआ था। रूबी ने कहा, 'जल्दी करो ! भाग जाओ !'

जुआरी ने कहा, 'लेकिन फिर तुम···'

रूबी ने बात काटी। कहा, 'मेरी चिंता न करो। जिस गंदे जीवन में मैं जिंदी ही जलाई जा रही हूं, उससे बढ़कर स्त्री के लिए और क्या दण्ड हो सकता है ? स्त्री की ही गोदी में पलकर आदमी इतना भयानक भेड़िया

बन सकता है, तो वह यहीं हो सकता है। जाकर हिंदुस्तान में पुकार-पुकार-कर कहो कि रूबी अकेली नहीं है, सैकड़ों रूबियां और उसके सैकड़ों भाई गोआ में गुलामी की जंजीरों में जकड़े पड़े हैं। उनसे कहो कि आज़ादी का समुद्र उनके यहां हिलोरें ले रहा है, उसकी एक लहर हमें भी चाहिए, क्योंकि उसके बिना हम पानी की मछली की तरह तड़प रहे हैं।'

जुआरी रो उठा। उसने रूबी के पांव छूकर कहा, 'मां! तू मेरी मां है। नहीं, नहीं, तू तो भारत माता है! तू अपमानित हो रही है। कैद में पड़ी हुई है। मैं वचन देता हूं कि यदि जीवित लौट सका तो वहां चिल्ला-चल्लाकर लोगों से कहूंगा कि वहां और कोई नहीं भारत माता पुकारती है!'

रूबी सुनती रही। और तब उसने उसे उठाकर कहा, 'जल्दी चले जाओ। समय बहुत कम है। जल्दी जाओ।'

वह तेज़ी से निकल भागा। कुछ क्षण वह संगीत की लय सुनती रही और तब मुड़ी। वेटर भीतर आकर उसके सामने खड़े हो गए।

एक ने कहा, 'रूबी!'

'क्या है?' रूबी ने निगाहें उठाईं।

दूसरे ने पूछा, 'वह कहां गया?'

रूबी हंसी। कहा, 'वहीं, जहां उसे जाना चाहिए था।'

वेटर कांप उठे। पहले ने कहा, 'लेकिन इसका नतीजा जानती है? डिसूज़ा हमें मार डालेगा?'

रूबी के होंठों पर घृणा खेल गई। उसने उपेक्षा से कहा, 'डरते हो? और यह जीवन अच्छा है जहां मैं तुम्हारी बहन होकर भी, तुम्हारी ही आंखों के सामने अपनी इज्जत बेचती हूं? तुम देख सकते हो इसे? और तुम जो मेरे भाई हो, बेगुनाहों का खून किया करते हो? क्या अभी तक तुम इस ज़िंदगी से ऊबे नहीं हो?'

दूसरे ने सिर झुकाकर कहा, 'लेकिन और चारा भी क्या है?'

पहले ने बाहर देखकर कहा, 'डिसूज़ा आ रहा है। उसके साथ पुर्तगाली सोल्जर हैं।'

दोनों भाई और बहिन सन्नद्ध होकर खड़े हो गए। डिसूज़ा अपने साथ

दो सोल्जर लेकर आकर कुर्सी पर बैठ गया। वह अब भी किसी चिंता में डूबा हुआ-सा लगता था। उसने सिर उठाकर कहा, 'वेटर ! काम हो गया ?'

पहले वेटर ने धीरे से कहा, 'वह भाग गया।'

डिसूज़ा पर जैसे गर्म पानी गिर गया। चौंककर उठ खड़ा हुआ। और चिल्ला उठा, 'भाग गया !'

उसने दांत पीसे और बुदबुदाया, 'कमीनो ! भाग कैसे गया !'

रूबी ने हंसकर कहा, 'बॉस ! भाग नहीं गया। वह तूफान लाने गया है।'

डिसूज़ा पर आवेश छा गया। उसने गरजकर कहा, 'बगावत ! मैं तुम सबको कुचल दूंगा।'

मोटे पुर्तगाली सिपाही ने लापरवाही से पूछा, 'क्या है ?'

डिसूज़ा ने क्रोध में व्याकुल होकर कहा, 'हुज़ूर ! इन लोगों ने पुर्तगाल के दुश्मन को छोड़ दिया।'

सिपाही ने आश्चर्य से पूछा, 'छोड़ दिया ?'

रूबी फिर हंसी। उसने कहा, 'छोड़ नहीं दिया। वह तो रोके से भी रुक नहीं सका।'

उसका हास्य फैल गया। क्षण भर डिसूज़ा ने किंकर्तव्यविमूढ़ होकर देखा। किन्तु मोटे का हाथ उठा। पिस्तौल की नली उठी और उसमें से आवाज़ आई—धांय···धांय···धांय···एक भयानक चीत्कार उठा···और रूबी अपने भाइयों के साथ लुढ़क गई। उसके शब्द सुनाई दिए, 'दरिंदो ! तुम्हें धूल में···'

पर उसके बाद कुछ भी सुनाई नहीं दिया। मोटा हंसा। डिसूज़ा ने आतंक से देखा, फिर वह भी भयभीत-सा हंस उठा।

संगीत की ध्वनि कुछ और तीखी हो गई और फिर लहू की एक धार सामने फैलकर लम्बी हो गई।

३

एक भारी आवाज़ ने कहा, 'संग्राम शुरू हो गया।'

भीड़ चिल्लाने लगी, 'गोलियों की बौछारें टूटीं···'भीड़ हट गई। दूर

से पुकार आई :

'भारत माता की जय…!'

और भारी आवाज़ ने कहा, 'लहू की बूंदें गिरते-गिरते आखिर अपना सैलाब लाईं और आखिर धरती के भीतर इकट्ठी होती हुई आग ने पत्थरों को भी पिघला दिया…खुंदते रहे, कट-कटकर गिरते रहे, लेकिन घेरा नहीं रुका और कातिल का हाथ भी इन्सान की ज़िन्दगी को धूल में गिराता हुआ पैरों से कुचलता रहा…जैसे वे इन्सान नहीं थे…गोया वे कीड़े थे…।'

तब गीत उठने लगा :

वंदे मातरम् ! वंदे मातरम् !
उठो प्रभात हो गया, नया प्रकाश जागता,
गगन-गुहा से ज्योति की अयाल अब हिला हिला
प्रभात-केसरी प्रचंड रोर से दहाड़ता
विनष्ट दासता मिटे, यही निनाद आ रहा
स्वतन्त्र मातृभूमि, जय ! अदीन मन पुकारता
वंदे मातरम् ! वंदे मातरम् !

और भारी स्वर उठने लगा, 'रणबांकुरे निकल आए ! भाइयों की पुकार ने भाइयों को शहीदों की टोली बना दिया। 'गोआ चलो ! गोआ चलो !' की पुकार गूंजने लगी। संसार के ईमानदारों की लड़ाई आ गई। इन्सानियत की जंग छिड़ गई। अंधे और मगरूर अत्याचारी और भी बर्बर हो गए। लो ! शहीदों की टोली निकली ! एक दिन एक बूढ़े ने केवल बहत्तर आदमियों के साथ डांडी में नंगे पांवों चलकर संसार के एक भयानक साम्राज्य को हिला दिया था। और फिर अब दूसरे की बारी आ गई।'

भीड़ बढ़ चली। एक ने पुकारा, 'वही है सीमारेखा।'

'वह देखो !' कोई चिल्लाया !

देखा ! कुर्सियां डाले बन्दूकें भरे पुर्तगाली सोल्जर बैठे हुए गिद्धों की तरह ललक रहे थे।

भीड़ के स्वर सुनाई दिए :

'आगे बढ़ो !'

'हम सीमा पार करेंगे।'

'उधर मत जाओ ! वे गोली चला देंगे ।'

'लेकिन हम तो निहत्थे हैं !'

'वे सचमुच खून के प्यासे हो रहे हैं ।'

और भारी आवाज़ ने कहा, 'फौलाद की दीवार निकल आई ।'

भीड़ में फिर हलचल हुई । स्वर गूंजने लगे :

'आगे बढ़ते हो ! देखो, बन्दूकें उठ रही हैं !'

निर्भीक आंखें । उठा हुआ भाल ।

'कौन ?'

'मैं हूं, माधवी !'

'कहां जा रही हो ? वे मार डालेंगे ।'

माधवी हंस दी । कहा, 'मौत से कौन डरता है ? जो लोग निहत्थों को मारना चाहते हैं, वे तो पहले ही हार चुके हैं । अब नहीं सहा जाता । किसीको कुचला जाता हुआ नहीं देखा जाता । जिसका सिर हिमालय की भांति ऊंचा है, और जिसकी पगचाप में महासागर की धड़कन है, वह मेरा भारत एक देश नहीं, मनुष्यों की स्वतन्त्रता का मूर्त जीवन है । अपने हों या दूसरे, उन्हें बर्बर के नीचे रुंदता देखकर चुप रह जाना क्या ईमान की जीत है ? देर हो रही है, और अत्याचारी के साहस को बढ़ावा दे रही है···दासता और स्वतन्त्रता के बीच कोई सीमारेखा नहीं, स्वार्थ का भय ही एकमात्र रुकावट है । इस सीमा को अपने लोहू से मिटाकर धोना होगा । तैयार हो ?'

झंडा उड़ने लगा । वे आगे बढ़े । और बहुत ही ठंडे खून से सोल्जरों ने गोलियां बरसाईं ।

ध्वनि उठी, 'जय···!'

और चीत्कारों में घायल लोट गए । लोग माधवी को उठाकर ले आए । फिर भीड़ के स्वर सुनाई दिए :

'हमने आक्रमण नहीं किया···'

'कब तक निरपराधों की हत्या होती रहेगी···'

भारी आवाज़ ने कहा, 'इतिहास से पूछो । मनुष्य के स्वार्थ से पूछो । बर्बरता का नंगा नाच नाचने वालों को देखो ! क्या वे नैतिक युद्ध में हार नहीं चुके ? और याद रखो···'

किन्तु पुर्तगाली सोल्जर हंसकर कुर्सियां लिए अपने डेरे में चले गए...

भारी आवाज़ ने बड़े अफसोस से कहा, 'चले गए। इन्सान के लोहू को पानी की तरह बहा देने वाले इन्सानफरोश चले गए! कोसों दूर से आकर नई फसल उगाने को आज़ादी ने अपनी ही खाद डाली है लेकिन इनके लिए इसकी कोई कीमत नहीं......'

बहुत दूर से एक तड़पती आवाज़ सुनाई दी......

'आओ!'

'आ......ओ......'

जैसे तब धरती बोल उठी। आवाज़ ने फिर कहा, 'माटी कांप रही है। सुनते हो! धरती गर्म होने लगी है। बर्बर के पांव अब गर्म होने लगे हैं। विद्रोह लरज रहा है। स्वतन्त्रता का दीपक निरन्तर जल रहा है, क्योंकि जब आज़ादी का दीवाना शहीद होता है, तब उसके लहू से धरती पर सचाई की चिनगारियां फूटने लगती हैं। माधवी! मर गई! नहीं, वह मरी नहीं है। उसका लोहू आखरी धब्बे को धोने के लिए बहा है। उसकी शहादत का चांद आज़ादी के समन्दर में नया ज्वार ला रहा है......'

पहला जुआरी आगे बढ़ आया और इसने तिरंगे झंडे को झुकाकर कपड़ा उतार लिया और माधवी को उससे ढंक दिया।

दूर से फिर करुण पुकार गूंज उठी :

'आओ'

'आ......ओ......'

और गीत उठने उठने लगा......प्रचण्ड गीत......

उठ! उठ! रक्त ज्वाल!
देख धरती आकाश दोनों आज हुए लाल......
तेरे गर्जन पर आज देते सागर हैं ताल!
मां है तेरी सौगंध क्रांति की है पुकार......
अब न लेंगे विराम...रक्त भीगा है भाल!!
उठ! उठ! रक्त ज्वाल!
देश धरती के अंग, गाएं भरकर उमंग,
होवे मानव स्वतंत्र, ज्योति जागे अमंद

कर दो तमतोम दूर, फहरे ज्योतित मशाल……
उठ ! उठ ! रक्त ज्वाल !

और वह गीत गूंजता चला गया।

उपसंहार

'मां ! और नहीं सुनाएगी ?'

'बेटा ! उजाले की कहानी रात का सहारा है। जब भी अंधेरा होगा, मैं तुझे उसकी याद दिलाऊंगी।'

'गायक सो गए क्या ?'

'नहीं, मेरे गीतों के स्वर वायु में जीवित हैं। वे कभी भी मर नहीं सकेंगे। जब मैं गा चुकता हूं तब सन्नाटा भी गाने लगता है।'

'अब यों बैठे-बैठे यह शीरा कब तक देखते रहोगे ?

'क्यों ? तुम्हीं बताओ ! क्या कभी इसकी मिठास मिट सकेगी ? इस-पर तो जो धूलि भी गिरेगी, वह भी मीठी हो जाएगी।'

'क्यों भाई ! डायरी खत्म हो गई ?'

'मेरी कहानी पीढ़ियों की कहानी है। हर क्षण ही एक जागरण है, एक दिव्य अनुभूति है। तुममें जिज्ञासा है तो कहीं से भी देख लो। विश्वास ही दूसरे के लिए जीवित रहता है।

'और कोई तस्वीर है ?'

'गर्दन झुकाकर देखो। क्या तुम ही मेरी सबसे नई तस्वीर नहीं हो ! ईमानदारी से अपने आपसे पूछो ?'

'यह कैसी मशाल जल रही है ?'

'आग है मेरे दोस्त ! ज्यादा घने अंधेरे में यह ज्यादा चमकीली दिखाई देती है। इसे बुझाने को तूफानों की फूंकें इससे टकराती हैं, लेकिन हर बार लपटें ऊंची ही उठती जाती हैं।'

६

तीन रेखाचित्र

मन, बुद्धि, पेट

मन

आगरे की बड़ी जेल पर सूरज की शाम की किरणें पेड़ों और टीलों की छाया में से छन-छनकर गिरती हैं और फिर दीवार के विशाल वक्ष पर रेंगती-सी ऊपर चढ़ती हैं और अन्ततोगत्वा आकाश में कुछ देर पीली-पीली-सी झूमती हुई पश्चिम में डूब जाती हैं। उस समय ऐसा लगता है जैसे सूरज कहीं इन पेड़ों के या बेरियों के झाड़ों के पीछे ही छिप गया है और थिरकता अंधेरा-सा आने लगता है। पश्चिम के विशाल गड्ढे में जब बरसात में पानी भर जाता है तब उसमें से निकली काली टहनियों को देखकर लगता है कि दिन में जो अंधेरा सूनी टहनियां बनकर रह जाता है, वही अब मौका मिलते ही फैलने लगता है। वही मैदान-सा पड़ा है। उसमें सिपाही कवायद करते हैं, कभी-कभी कोई औरत भेड़-बकरियों को पीपल की छाया में बैठकर चराती है, और अपने बच्चों को बिजली के कुएं पर चढ़ने से बरजती है और कभी-कभी कैदी जेल के डाक्टर के आलीशान बंगले के लहलहाते बगीचे में काम करते हैं या सड़क पार करके क्वार्टरों के सामने के सूखे मैदान में के ऊंचे कुएं से पानी उलीचते हैं। जाड़ों के दिनों में पुराने कैदी डंडों पर बैठकर डंडा-बेड़ी से लैस साथियों के कन्धों पर हाथ धरकर आते-जातों से बीड़ी या पैसे मांगते हैं, या फिर गाते हैं, और उनकी उस बरबाद जिन्दगी की आवाज जब जेल की दूसरी दूर की दीवार से टकराती है तब एकाध साधू भजन गाता है। साधुओं ने जेल की दीवार के बराबर बगीची, मन्दिर बना लिए हैं जहां सिपाही ही अपना भाग्य पूछने आते हैं।

यह जिसके बाहर की तस्वीर है, उस केन्द्रीय कारागार के भीतर जिंदगी का दूसरा ही पहलू है, यह उदयवीर को तब ही पता चला जब वह एक दिन यहां मेहमान बनकर आ ही गया। आने का कारण इतना सीधा-सादा था कि उसके बारे में जब उदयवीर सोचता है तो उसे लगता है कि यह सारी दुनिया आज एक झूठ पर कायम है। वह जूतों के कारखानों में काम करने वाले मज़दूरों की यूनियन बनाने गया था। मालिकों ने आजकल चमड़े की जगह गत्ता लगाकर सारी दुनिया में अपने व्यापार की ठिठोली कराई थी, मांग कम हो गई थी; चुनांचे कारखानों के बन्द होने की नौबत आ गई थी। मालिक अच्छा माल बनाकर उतनी ही कीमत में बेचने को तैयार नहीं थे क्योंकि उसमें नफा कटता था। मज़दूर बेकार होने लगे। उदयवीर ने मज़-दूरों की यूनियन बनाई। सरकार ने उसे बाज़ार से हटाकर जेल में पटका और सोचा कि यों वह खत्म हो जाएगा। पर बगावत का तो एक भी नारा एक बीज है जो इन्सान के दिल की उपजाऊ धरती में पैठता है, पर उसकी जड़ें पीढ़ियों में उतरती हैं, फलती-फूलती हैं और तब वह बीज विशाल वृक्ष बन जाता है जैसे एक बूंद का नारा एक दिन महानद का-सा निर्दोष बन जाता है और तब वह नहीं रुकता, नहीं रुकता। परन्तु उदयवीर की व्यापक चेतना को जेल की दीवारें बन्द किए हैं और यह भी जीवन का एक सत्य है। वह गद्दों पर नहीं है। वह सोच रहा है कि इस समय बाहर कदम्बों पर रोएं फूट आए होंगे, हवा में गन्ध होगी, आजकल दिल्ली दरवाज़े के छोटे-से ताल पर सतरंगी सांझ उतरती होगी, और वह जेल में बैठा है। यह तो गनीमत है कि वह क्वारा है, घर की उसे कोई चिन्ता नहीं सता रही है। पर जब मिल की हड़ताल हुई थी और मथुरादास की कैद के वक्त उसकी बीवी ने चार बच्चों की भूख न सह सकने के कारण पुल पर से कूदकर जमुना को अपनी जान दे दी थी, तब वे जेल की दीवारें उसको पागल बना देती थीं। उदयवीर के पीछे बुद्धि है, अपनी व्यक्तिगत मजबूरी नहीं, जीवन में स्वार्थ नहीं, यश की नीच लालसा नहीं। रंग का काला है, नीचे का होंठ कुछ मोटा है। दोनों भौंहें पतली हैं, मूछें हैं तलवार कट। और हाथों पर बेहद बाल हैं, काले-काले जो सीने तक लहराते हैं और स्याही के छिलने पर भी ठोडी और गालों पर स्लेटी रंग छोड़ जाते हैं।

उदयवीर की रूमानी दुनिया अपने आपको कपड़ों की तरह बनाती जा रही है और ज़िन्दगी की असलियत घाट पर कपड़े धोने वाले की तरह उन कपड़ों को पटक-पटक कर धो रही है। जितनी ही तकलीफों के झटके लगते हैं उतनी ही वह रूमानियत अपनी ज़िन्दगी छोड़ती जाती है, और विचारों के वस्त्र साफ होते जाते हैं, जिन्हें जब तरकीब की इस्त्री से निकालकर पेश किया जाएगा, इन्सानियत पहनने में गौरव का अनुभव करेगी।

और जब से उदयवीर यहां आया है, सुबह-शाम आज़ाद हिंदुस्तान का झंडा चढ़ता-उतरता सूरज को सलामी देता रहा है। इतवारों के लिए सनीचर को ही मिलने वालों की भीड़ केन्द्रीय कारागार के सामने बनी तिदरी में, या तिदरी के सामने पड़ी रही है, वहीं एक काना आदमी बक्स में से बटन, कंघे बेचता रहा है। वहीं एक सेठ की आलीशान कोठी की बिजलियां रात-रात जलती रही हैं, और सब कुछ देखने को ऐसा चलता जा रहा है, जैसे कुछ नहीं, सब ठीक है। पर उदयवीर समय की कुठार की तेज लपलपाती धार को देख रहा है और अनुभव कर रहा है कि नई दुनिया आनेवाली है और वह जब आएगी तब यह सारी मुसीबत भी चली जाएगी।

पर आज उसका मन क्यों नहीं लग रहा है। जब से वह आया है वह काली बरौनियों का मजबूत आदमी जब हंसता है तो डर लगता है। उसे बार-बार याद आ रहा है, उस आदमी के हाथों की नसें उफनी हुई हैं और नाखून देखने में ऐसे चौड़े और सख्त हैं कि वे शायद तसले में छेद कर देंगे। उसके गाल चिपके हुए हैं और जब वह उकड़ूं बैठकर कंधों पर हाथ रखकर हाथों की, सीने पर, सलीब-सी बना लेता है, तब ऐसा लगता है जैसे कोई चीता झपटने वाला है। पहले ही दिन उसने उदयवीर को देखा तो हंसा। उसकी हंसी में उदयवीर के लिए दर्द था या वह उसका मज़ाक उड़ा रहा था, यह वह आज तक नहीं जान पाया था। उसके साथ पांच आदमी और थे। एक सुस्त और दूसरा मस्त, तीसरा चुस्त, चौथा पस्त और पांचवां कुछ नहीं। ये छः आदमी एक मज़बूत पंजे की छः उंगलियों की तरह सुबह खुलते और तब प्रकारान्तर से हरएक का उंगलियों की ही भांति बल-भेद प्रकट हो जाता, पर जब शाम को वे सब आकर एकत्र होते और मुट्ठी बन्द हो जाती तो उदयवीर को ऐसा लगता कि यह जीवन एक लाचारी है, क्योंकि

इसमें वेदना के अतिरिक्त कुछ नहीं। आदर्शों की छाया में यथार्थ पलता है, पर यथार्थ की छाया में आदर्श बढ़ता है। उदयवीर ने एक दिन उस मज़बूत आदमी को जीत लेने का निश्चय किया। वह स्वयं चतुर था और मज़बूत आदमी के दांत व्यंग्य से चमके, 'बाबू! अब कौन-से देश के लिए जेल आए हो? पहले तो कांग्रेस वाले आया करते थे।'

उदयवीर ने उसके कन्धे पकड़कर कहा, 'तो तुम सब तब से जेल में हो?'

इस एक वाक्य में कितनी संवेदना थी कि उस मज़बूत आदमी ने अपने साथियों की ओर देखा जो चुपचाप खड़े थे। उनके हाथ ऐसे लटके हुए थे जैसे गिद्धों के पंख खुल जाते हैं। वे चौंके थे, पर चुप थे। ऐसा लगता था जैसे बिजली की तरह कड़ककर, हुमसकर, बरस जाने के पहले, बादल टकराने को तैयार हो रहे हों।

'हर आदमी' उदयवीर ने मुड़कर किसी ओर न देखकर कहा, 'शरीफ होता है, लेकिन ज़िन्दगी की मजबूरी उसे गुण्डा और बदमाश बनाती है। क्योंकि जिनके हाथ में कानून है, वह उनसे टक्कर नहीं खाता।'

'शराफत' पस्त आदमी ने फुफकारकर कहा, 'शराफत!'

उसमें व्यंग्य था। और मस्त आदमी ने कहा, 'हमने गुनाह किया है, उसकी सज़ा हमें मिलनी ही चाहिए। क्यों किया है हमने पाप, क्योंकि हम भले बनकर नहीं रह सके?'

'भले बनकर?' मज़बूत आदमी ठठाकर हंसा और उसने अंगड़ाई ली। हड्डियों के चटचटाने की आवाज़ आई और फिर कोई नहीं बोला। वे सब चुप हो गए।

उदयवीर ने कहा, 'चोरी और बेईमानी का पैमाना जेल ही है तो बाहर जो सफेदपोश चोर और डाकू हैं उनका कौन ज़िम्मेदार है?'

पस्त आदमी ने कहा, 'ज़िन्दगी तड़पने के लिए है।'

'झूठ है।' उदयवीर ने कहा।

'अभी तुम लड़के हो बाबू।' चुस्त आदमी ने कहा, 'सहना सहज नहीं होता।'

और तब उस सुस्त आदमी ने और भी सुस्ती से कहा, 'जो है सो तो

है ही। और कुछ नहीं हो सकता।'

और उदयवीर ने देखा कि उनके सामने मजबूत आदमी ऐसा दिखाई दिया, जैसे रेल के खाली डिब्बों के सामने एक इंजन, जिसकी भाप गरम नहीं है, जिसमें ज़िन्दगी का कोयला दहक-दहककर जल चुका है, राख हो गया है।

उदयवीर सोच रहा है, सोच रहा है। ज़िन्दगी एक सहज रास्ता है, उनके लिए ही, जो चाहते हैं कि अपने बोझे को ढोते समय, केवल सुख का अनुभव करे। और सुस्त आदमी की आखिरी बात उसके कानों में गूंज रही है।

'आदमी का मौत पर कोई बस नहीं। वह जब चाहे मर सकता है। कोई आदमी भी मौत के लिए फुर्सत नहीं पाता, क्योंकि उसे हमेशा काम बने रहते हैं। जिन कामों से घबराकर वह मौत को बुलाता है, वे भी उसे बहुत प्यारे होते हैं। मौत को बुलाना सिर्फ कहने का तरीका है कि वह जीते जी ही सब काम करने का आसान रास्ता क्यों नहीं निकाल पाता।'

तब मस्त आदमी ने कहा था, 'तू सोचता क्यों है? अगर तुझे जीने में मज़ा नहीं आता, तो मर क्यों नहीं जाता?

चुस्त आदमी की आखें चमक उठी थीं, उसने कहा था, 'अपने आप मरना खुदकशी है और वह गुनाह है। पाप है।'

चौथा आदमी अपनी दर्देदिल मस्ती को लेकर शायद पहली बार मुस्कराया और उसने अपनी उंगलियों को चटकाकर कहा था, 'खुदकशी पाप है। क्यों? क्योंकि जिनके हाथों में ज़िन्दगी की लगाम है वे हम जैसे घोड़ों का मर जाना ठीक नहीं समझते, क्योंकि उनकी गाड़ी फिर चलेगी कैसे?'

पाचवां आदमी कुछ नहीं बोला, क्योंकि उसका जैसे कोई व्यक्तित्व ही नहीं था। उसने बारी-बारी से सबकी ओर देखा, फिर ऊपर के अनगढ़ दांतों को दिखाकर नीचे के खुरदरे दांतों पर जमाकर पलकें झुका लीं। मजबूत आदमी ने उदयवीर की आंखों में झांककर देखा, जैसे वह उसके भीतर के उस इन्सान को देखना चाहता था, जिसपर कोई आवरण नहीं थे, जो इन समस्त आदर्शों का पिता था, जो इस घुमड़न में नई ओर की चाहना

था, जो दूर तक के फैले आसमान में विद्रोह के फटफटाते पंखों के सहारे तैरती आशा का प्रतीक था, जो समुद्र में कभी अचल, अट्टहास करता था, कभी मोतियों को सीपों की हथेलियां खोल-खोलकर बिखरा देता था, वह वही इन्सान था जो सबमें एक था और एक दूसरे के पास आना चाहता था। जिसे सब तरह के छोटेपन और कमीनेपन से नफरत थी। वह इतना महान् था, जैसे हजारों फूलों की गन्ध से महकता हुआ जंगल, जिसमें सदा ही आशा का मोर, स्नेह के बादल की गरज सुनकर सिर उठाकर कूका करता है। उदयवीर के मन में अनेक विचार उठे। मजबूत आदमी ने दीवार से सिर टेककर छत की ओर देखते हुए कहा, 'तुम समझे बाबू! इसने क्या कहा? वह कहता है कि आदमी एक दूसरे के लिए जिन्दगी चाहता है। नहीं, वह झूठ कहता है।' उसका स्वर उठा, 'वह अपने लिए जीता है। अपने लिए। मुझे जेल में पन्द्रह साल हो गए, मगर मैं फिर भी जी रहा हूं। क्यों? मौत आएगी और मुझे अचानक ही ले जाएगी। तबतक मैं इस मिट्टी से मुहब्बत करके अड़ रहा हूं और यह कहता है कि हमको जिलाया जा रहा है। पर तू जीता क्यों है?'

मस्त आदमी जैसे तैयार था। उसने कहा, 'क्योंकि यह धोखा, धोखा देने वालों के भीतर से उतरकर धोखा खाने वालों में उतर आया है।'

उदयवीर सोच रहा है। राजनीतिक भाषा में पस्त आदमी कहता है, 'जिनके हाथों में वर्गस्वार्थ है, वे दरिद्र और दीनों को जीवित रखना चाहते हैं, ताकि वे उनके शोषणों को स्वीकार करते रहें। वह कह रहा है कि आत्महत्या उनके सामाजिक नियमों, धर्मों और शोषण-प्रक्रम के प्रति विद्रोह है। क्या वह ठीक है?'

'तू बोलता क्यों नहीं?' मजबूत आदमी ने व्यक्तित्वहीन पुरुष से कहा, जिसके दांत अब होंठों में से कुछ दिखने लगे थे।

'नहीं बोलता,' उसने धीरे से कहा, 'क्योंकि तुम दोनों ठीक कहते हो। जिन्दगी अपने आप में अच्छी है, प्यारी है, और आदमी जिन्दा रहना चाहता है। उसकी इस कमजोरी या ताकत का फायदा वे लोग उठाते हैं जो उसे जोतते हैं।'

उदयवीर ने सुना। वह चुप हो गया। सच कहा है। क्या उसमें

व्यक्तित्व की हीनता है ? बात से तो ऐसी नहीं लगती। घड़ा खाली लगता है ज़रूर, पर जब उसे औंधा किया गया है तो उसमें से तो प्यास बुझाने लायक पानी निकला है। पर अब वह मुस्कराया। ऐसे, जैसे वह कुछ नहीं है, वह तो कभी भी कुछ नहीं था, शायद होगा भी नहीं। और यही उसका कुछ नहीं का रहस्य है।

मजबूत आदमी इस समय अत्यन्त निर्बल-सा दिखाई दे रहा है। वह घूम रहा है, बार-बार, जैसे सांप सिर्फ अपनी मणि के पास डोल रहा है, जैसे चीता अपने पास मरे पड़े मृग के चारों ओर घूम रहा है। यह इतना कमजोर क्यों दिख रहा है ?

उदयवीर ने कहा, 'तुम विश्वास नहीं करते, तभी उसमें जीवन डावांडोल हो उठा है। मुसीबतों में आदमी को कौन जिन्दा रखता है ? आशा ! उदयवीर ने सिर उठाया और पस्त आदमी ने और भी सिर उठाकर कहा, 'छिलावा ! आज नहीं कल, कल नहीं परसों, जमी है कभी हथेली में सरसों ?'

बाकी लोग हंसे। वह हंसी नहीं थी, क्योंकि बेड़ियां झनझनाई ! और फिर जेल की कड़ी दीवारें उनकी काया के नीचे कुलबुलाने लगी थीं। उदयवीर का सिर झन्ना उठा। मजबूत आदमी की पलकें भींग गई थीं। उसने अन्त में कहा, 'वे हमें इस्तेमाल करते हैं, पर हम ढोते भी तो हैं।'

उदयवीर के होंठों पर मुस्कराहट दिखाई दी।

उस दिन फिर वे नहीं बोले। आज उदयवीर का मन फिर छटपटाया है और फिर वे इकट्ठे हुए हैं। आज आकाश में घटा गरजी है। आज हवा जेल और जेल के सूनेपन को एक किए दे रही है। जेल के बराबर के गड्ढे में लबालब पानी भर गया है और मेंढक और झिल्ली अपनी अनवरत टर्र-टर्र और झनकार से अंधेरे को भारी किए दे रहे हैं, और भी स्याह किए दे रहे हैं। सामने जो सन्तरी घूम रहे हैं वे भी आश्वस्त हैं, क्योंकि ये पांचों और व्यक्तिहीन छठा कभी भागे नहीं, और भागेंगे भी नहीं। हां यह नया जो आया है, वह नया है। भारी जूतों की पगध्वनि उसकी अबाध गति को रोक देने के लिए काफी है। आकाश में कभी-कभी बिजली चमक उठती है, कांपती है और जेल में शमशीर-सी चमचमाकर बादलों की म्यान में

छिप जाती है।

बुद्धि

आगे और पीछे की घटनाओं का तांता जीवन के दोनों छोरों के बीच ऐसा फैला रहता है कि कुछ पता नहीं चलता। मनुष्य का जन्म भी दूसरों की कही हुई कहानी होती है और मृत्यु भी। एक में ज्ञान का अभाव रहता है, दूसरे में ज्ञान विलुप्त हो जाता है। इस दौरान के बीच जो समय का टुकड़ा है, उसे कहते है जीवन, जिसमें इतना संघर्ष है, इतना कोलाहल है, इतनी घबराहट है।

रेल अपनी रफ्तार से दौड़ी चली जा रही है और मैं बैठा सोच रहा हूं अपने तीसरे दर्जे के डिब्बे में। ठसाठस भीड़ भरी है, इसमें मर्द भी हैं और औरतें भी। कहीं जैसे सरकने की जगह नहीं है। मेरे सामने एक मटमैले कपड़े पहनने वाला आदमी बैठा है। मैं उसे देखता हूं और फिर मेरी निगाहें बाहर सरसों के लहराते खेतों पर चली जाती है। बाहर सोना बिखरा है, भीतर आग है। एक माटी ने सुन्दरता पैदा की है, और दूसरी माटी ने यद्यपि उससे भी बड़ी सुन्दरता को जन्म दिया है, किन्तु यह सुन्दरता अवरुद्ध हो गई है। सोचता हूं क्यों? और शीघ्र मुझे उत्तर नहीं मिल पाता। जिस तरह डिब्बे में भरा बूरा बार-बार डिब्बे को हिलाने से उसमें भीतर बैठ जाता है क्योंकि हिलने से तह जमती है, बीच की हवा निकल जाती है, उसी तरह रेल के डिब्बे के हिलने से भी मुसाफिरों में जगह बन जाती है। उनके आपस का अलगाव हटकर, एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता की तह जमने लगती है और वे उस आराम में बैठ जाते हैं, जिसे सिर्फ रेल का आराम कहा जा सकता है। उस समय मन में एक ही बात रहती है। वह यह कि थोड़ा-सा सफर है, जैसे भी हो मिल-जुलकर काट लिया जाए। रेल हमारी नहीं है, हमारी तो मजबूरी है। और देखता हूं कि यही हमारी जिन्दगी भी है। अपने हज़ार मतों, धर्मों, विश्वासों, रूढ़ियों, दर्शनों को लिए हुए भी हम असल में जीवन को इसी तरह समझते हैं। यूरोप के रहने वाले अभी कम उम्र हैं। जब मैं कम उम्र कहता हूं तब व्यक्ति की नहीं, संस्कृति की आयु का प्रश्न उठाता हूं। जुमा-जुमा ईसामसीह से नई जिंदगी का एक दौर चला है, उनके यहां, उससे करीब दो हज़ार साल पहले यूनानी और रोमन

सभ्यताएं समाप्त हो जाती हैं। मगर हम आज से छः हजार साल पहले भी एक बूढ़े मोहन-जो-दड़ो को देखते हैं। तब भी हमें एक शिवलिंग मिलता है और आज भी हम उसे मानते हैं। हम इसलिए भी अधिक बूढ़े हैं कि बाकी लोगों ने बार-बार जन्म लिया है, मगर हम हैं कि बहुत दिन से चले आ रहे हैं, यह और बात है कि हमने भी अपने वस्त्र बार-बार बदले हैं। यही कारण है कि हमारे जीवन का दृष्टिकोण ही ऐसा हो गया है। चाहे हम किसी भी मतवाद को जोर-ज़ोर से चिल्लाकर क्यों न स्वीकार करें, किन्तु हमारी परम्परा ने हमें यही विरासत दी है, और वह हमारे भीतर उतरकर रम गई है।

इसी तरह सोच रहा हूं कि एक मुसाफिर छींकता है और सब चौंक पड़ते हैं क्योंकि हम सब खामोश हैं। फिर वह छींकने वाला मुस्कराता है और फिर चुप हो जाता है। मैं फिर सामने की खिड़की के बाहर देखने लगता हूं। तरह-तरह की समस्याएं मेरे सामने आने लगती हैं। मैं उन्हें भूल जाना चाहता हूं।

कहीं नौकरी करता हूं, कहीं रहता हूं और इस तरह मुझे जो दौरे पर रहना पड़ता है, बच्चों की देखभाल ठीक नहीं हो पाती। मेरी पत्नी सुबह से शाम तक खटती रहती है। बच्चे स्कूल चले जाते हैं। उन्हें लाने-लिवाने की दूसरी इल्लत है। छोटे हैं, कहीं खो न जाएं, यही समस्या बनी रहती है।

मेरे बड़े ऊंचे अरमान हैं लेकिन वे पूरे नहीं हो सकते। इसीपर मुझे एक कहानी याद आने लगी है।

एक कुम्हार रोज़ अपने गधों की पीठ पर मिट्टी लादकर बेचने ले जाया करता था। जिस रास्ते से वे गधे जाते उसके दोनों तरफ खेत लहराया करते थे। उस हरियाली को देखकर चतुरचित्त नामक गधे के मुंह में पानी आ गया। उसने अपने पीछे आने वाले दृढ़मानस नामक गधे से कहा, 'बन्धु! इस धरती पर इतनी हरियाली है कि देखकर लगता है कि यदि हम इसे खाने लगें तो यह कभी भी खतम नहीं हो। फिर हम क्यों इस तरह बोझा उठाते हैं। हाय, इसी मिट्टी में हमें जाकर मिल जाना है, फिर यह मिट्टी क्यों हमारे ऊपर भूत की तरह रोज लद जाती है और हमें चैन नहीं लेने देती।'

दृढ़मानस नामक गधे ने कहा, 'मित्र ! यह खेत मनुष्य नामक जन्तु के द्वारा उगाए हुए हैं और उसीकी बिरादरी का यह कुम्हार है। अगर हम खेत चर जाएं तो कुम्हार पकड़ा जाएगा अतः हम नहीं खा पाते।'

गधों की बातचीत बन्द हो गई। अभी तक चुपचाप सुनता चला आ रहा था पीछे-पीछे सुयोगदास नामक गधा। उसने कहा, 'अरे यह पराक्रमी कौन है जो इन खेतों को चरे जा रहा है और देखो तो इसका लाघव कि सर्वत्र नहीं चरता, अच्छे-अच्छे भाग में मुंह मारता है।'

यह सुनकर चतुरचित्त विचलित हो उठा और बोला, 'हाय-हाय ! यह तो गौपुत्र बिजार है। इसे कोई क्यों नहीं रोकता ?'

दृढ़मानस ने कहा, 'भाइयो ! इसके सींग हैं न, इसी कारण इसे कोई नहीं रोक सकता। हम पिछले पैरों से हमला करते हैं, मगर हमारी पूंछ इतनी चौड़ी नहीं होती कि पीठ पर पड़ते डंडे को रोक ले। इसीलिए हमें कान पकड़कर बांध दिया जाता है। किन्तु बिजार के सींग हैं और सींग आगे हैं, जिधर उसकी आंखें हैं।'

जब वे तीनों अभाव से ग्रस्त होकर उदास हो गए तो चुप हो गए। उस समय विचक्षण मेधा नामक गधे ने कहा, 'मित्रो ! तुम उदास नहीं हो जाओ। जीवन परोपकार है। बिजार का क्या कोई आदर्श है ? हम हैं, आदर्शवादी। इसीलिए हमको श्रमदान करना चाहिए।'

गधे मेरी आंखों के सामने से चले गए, किन्तु मैं ही रह गया हूं। यह सारा जीवन एक ऐसा श्रमदान है, जो मैं विवशता से करता-करता इतना आदी हो गया हूं कि अब मुझे यह स्वेच्छा से किया हुआ लगने लगा है।

याद आ रही है मुझे। मुश्किल से खर्च चलता है, लेकिन फिर भी मैं इन्तज़ाम तो कर ही लेता हूं, मगर अब इस नई तरह की मुश्किल का मैं क्या हल करूं ?

छोटे बच्चे शेखर की समस्या है कि उसका स्कूल बहुत मंहगा है। और है ज़रा-सा। तिसपर तुर्रा यह कि वह स्कूल है अंगरेजी का। वह अंगरेजी क्या सीखता है, घर के सब लोगों को हेठा समझने लगा है। देसी स्कूलों में भेजा था तो गाली सीख आया था, और अब अंगरेज़ी की गाली देता है। पहले वह अर्जुन-भीम की बात करता था, पर अब आर्थर और हरक्यूलीज़ की ही बात

करता है, जैसे उर्दू ही पढ़ने वाला व्यक्ति सिर्फ ऊजविनीनक और रुस्तम की ही बातें किया करता है। मैं उसे देखता हूं और सोच नहीं पाता कि क्या करूं? देश के नेता पुकारते हैं—देश को राष्ट्रभाषा चाहिए और वह हिन्दी ही है।—बाकी कई लोग पुकारते हैं कि हिन्दी नहीं प्रांतीय भाषाएं तरक्की करें। ठीक है। पर सब पढ़ाते हैं बच्चों को अंगरेजी और अंगरेजी का ही अभी भी बोलबाला है। समाज में जो अंगरेजी नहीं जानता, उसकी कद्र नहीं है। अगर संस्कृत भी अंगरेजी के साथ पढ़ी है तो दुगुनी कद्र है। वैसे यह भी सच है कि अंगरेजी के हाथ-पांव बड़े हैं, बड़ा मुंह है, बड़ा पेट है और ज्यादा खाने-पीने से उसका दिमाग भी बड़ा है। इसलिए शेखर को अंगरेजी पढ़ने मैंने ही भेजा है कि कल के समाज में वह पिछड़ा हुआ न रह जाए। लेकिन अंगरेजी पढ़ाई जाती है पब्लिक स्कूल में। पब्लिक का मतलब लगाया जाता है—संस्कृति का स्थान अर्थात पण्डित सुंदरलाल के भारत में—कल्चर की गद्दी। पर मैं समझता हूं कि पब्लिक का अर्थ है जनता और पब्लिक स्कूल का असली अर्थ है—वह स्कूल जहां जनता के बच्चे न पढ़ सकें। पढ़ सकें उनके, जो कैसे भी हो पढ़ाते ही हैं।

शेखर में पढ़ाई का जोश तो है, पर शायद स्कूल में कई बच्चे पढ़ते हैं, इसलिए जोश तो बच्चे में आ ही जाता है। और मेरा छोटा भाई है शेखर के दूसरे सिरे पर। है बड़ा अच्छा विद्यार्थी। ठीक इम्तहान के वक्त बीमार पड़ गया और फेल हो गया। अगली बार एक बाहर के परीक्षक आए। माधव के विभागीय अध्यक्ष ने बड़ी सहानुभूति से परीक्षक को बताया, 'माधव मेरा बहुत अच्छा विद्यार्थी है। पर साल बीमार पड़ा और फेल हो गया। वैसे यह फर्स्ट क्लास पाएगा।' परीक्षक ने देखा और सिर हिलाया। परिणाम में माधव थर्ड क्लास पास हुआ। पता चला कि उस वर्ष परीक्षक महोदय का पुत्र भी उसी परीक्षा में बैठा और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। माधव से परीक्षक का व्यवहार ऐसा न होता तो और होता भी क्या? माधव और क्या पाता? अब वह क्लर्क है, जीवन के प्रति रूखा और परीक्षक का पुत्र विलायत गया है, विलायत—जहां जाने में तीर्थ-स्नान का पुण्य प्राप्त होता है। क्यों न होगा भला, जब पेरिस से लोग हिन्दी

की डाक्ट्रेट लाते हैं; मगर फ्रेंच की डाक्ट्रेट लेने कोई फ्रांसीसी दिल्ली नहीं आता।

मैं इस इम्तहान का चक्कर समझ नहीं पाया हूं। इसकी तुक क्या है? और अक्सर बड़े-बड़े आदमी यह भी कहते हैं कि इम्तहान एक 'चान्स' की बात है। कौड़ी फेंकना और इम्तहान देना बराबर है। यों मैंने देखा यह भी है कि फर्स्ट क्लास आने वाले आदमी का भविष्य डाकखाने में रजिस्ट्री की रसीदें काटते बीतता है। सफलता का रहस्य आजकल पैसा है। अच्छे से अच्छे लेखक की किताब वह प्रकाशक जांचता है जो कम से कम पढ़ा होता है और आज हर सम्पादक सम्पादक की कुर्सी पर बैठते ही आलोचक और 'जनमत' बन जाता है। यह पढ़ाई आखिर किस काम आती है? चौदह साल पढ़कर जब लड़का एम० ए० बनकर निकलता है तब उसका क्या मूल्य होता है यह माधव के जीवन ने मुझे बताया है। और फिर शिक्षा का अर्थ क्या है? साधारण जनता और शिक्षित में एक वर्ग-भेद-सा पैदा करना? या शिक्षित का लोकप्रेमी होना? हमारी शिक्षा क्या संस्कृति का प्रसार करती है? विद्यार्थी मार-पीट भी करते हैं और जब कालेज की कैद से बाहर निकलते हैं तब अपनी शेर की खाल छोड़ जाते हैं और अपने असली रूप में जिन्दगी की लहलहाती हरियाली को चरने के लिए आंखें उठाते हैं, तो वह लोहे के कंटीले तारों में घिरी मिलती है। शिक्षा मंहगी है, शिक्षित की जिन्दगी का सपना मंहगा है, वह लोक-कल्याण के लिए नहीं, अपने लिए मांगता है सब कुछ। और जब नहीं मिल पाता तो कोई भूदान, श्रमदान चिल्लाता है, कोई इसी तरह की किसी दूसरी टकियल पार्टी की नेतागिरी करके पेट भरता है, वर्ना क्लर्की का भाड़ तो है ही। चारों तरफ घुटते हुए अरमान हैं, कसक है, गोया जिन्दगी एक हाय हाय है। भूदानी की पुड़िया खोलता हूं तो वहां राई-रत्ती भी नहीं मिलती, क्योंकि उसमें नंगा रहना, भूखा रहना आदर्श है और कम्यूनिस्टों की दुकान में दिमाग के सिक्के से कीमत अदा करके चन्द लोगों के शिकंजे में जकड़े रहने की आज़ादी मिल सकती है, जिनका ख्याल है कि दुनिया में आज तक, अब तक, और आयन्दा, एक ही बुद्धिमान व्यक्ति पैदा हुआ, जो मार्क्स था। अगर आप इसे नहीं मानते तो आप पूंजीवाद के कुत्ते हैं,

गधे हैं, ठीक जैसे श्रमदानियों के शब्दों में आप नास्तिक हैं—सत्ययुग के शत्रु हैं। असहिष्णुता इस संस्कृति का आधार बन गई है। क्या है यह सब। सैकड़ों, लाखों, करोड़ों रुपयों की इन्सान के बच्चों के लिए बरबादी हो रही है और इन्सान के बच्चे उस रुपये के लिए ज़िबह किए जा रहे हैं।

क्या यह सब केवल घृणा की बात है? क्या मनुष्यत्व में से मेरी आस्था उठ गई है? यह प्रश्न मुझसे पूछे जाते हैं और मैं सोचता हूं।

वर्गों का समाज या वर्गहीन समाज—इन दोनों का एक सत्य है कि बुद्धिमान मूर्ख को दबाता है। वह मिस्र में भी प्राचीनकाल में यही करता था। जो कहते हैं कि 'विकास में तब एक पुरोहितवर्ग बना, जो बुद्धिमान था,' वे यह क्यों नहीं बताते कि वह पुरोहितवर्ग बुद्धिमान क्यों बना? और बाकी के लोग क्यों नहीं वैसे बने? इसका अर्थ है कि प्रारंभ से अब तक कुछ लोग बुद्धिमान रहे हैं, कुछ लोग मूर्ख। बुद्धिमान दो तरह के हैं। एक वे जिन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रयोग किया है लोक में अपना प्रभुत्व स्थापन करने के लिए, स्वार्थ साधने के लिए। यह बुद्धिमान तीव्रबुद्धि, विचक्षण और कुटिल भी होते हैं। दूसरे बुद्धिमान वे लोग हैं जिन्होंने लोककल्याण के लिए नये-नये मत चलाए, किन्तु उनकी बुद्धिमत्ता स्वयं एक भार बनकर लोक पर छा गई। तो यह साफ हो गया कि बुद्धि और अबुद्धि का यह भेद बराबर रहा है, जितना ही जनता का स्तर बढ़ता है, उतना ही शासकवर्ग अधिक चतुर हो जाता है, और भेद बना ही रहता है। श्रद्धा, विश्वास और आस्था पराजित मूर्खों के मूल्य हैं, जिनपर दंभी और अहंकारी बैठकर राज्य करते हैं। ऐसा क्यों है? क्या यही शिक्षा का सही काम है?

मुझे गांव की याद आ रही है जहां थोड़े-पढ़े आदमी की भी कद्र होती है और वह प्रायः अपना उल्लू बे पढ़े-लिखों पर साधा करता है। काफी पढ़ा आदमी प्रायः अहंकारी होता है, और कभी-कभी भला भी निकलता है। गंवार भी प्रायः घमंडी और कभी-कभी भला मिलता है। इसका अर्थ है कि शिक्षा और अशिक्षा भले-बुरे का भेद नहीं बनातीं। भला-बुरापन स्वभाव की बात हैं। शिक्षा गढ़न है, अशिक्षा अनगढ़ता; और एक बात कह दूं कि शिक्षा समाज में, जैसे अनेक प्रकार के वस्त्रों में श्रेष्ठ वस्त्र हैं, ओढ़ लिए, पहन लिए—वैसे ही है। शिक्षा ढोंग है, अशिक्षा है उजड्डता। मुझे

कुछ हल नज़र नहीं आ रहा है। यह तो केवल आलोचना हुई, इसमें हल क्या है?

हल की बात ने मुझे चौंकने को विवश किया है और मैं सोचता हूं कि केवल किसीपर टीका-टिप्पणी करने से ही क्या हो जाता है?

मुझे अपने पर गुस्सा आ रहा है क्योंकि मैं दूसरों से खीज रहा हूं। मैं सुन्दर को खोजना चाहता हूं और सुन्दर जो है वह मुझे सब तरफ विकृत-सा दिखाई देता है। मुझे सड़े हुए भेजों की दुर्गन्ध आती है। जो अध्यापक-वर्ग है वह इतना विनष्ट है कि उसे देखकर मुझे तरस आता है। नौकरियां हैं अध्यापकवर्ग की; जैसे कोई क्लर्क हों। ग्रेड के झगड़े, खुशामद, ऊंचे पद वालों का सरकारी नौकरशाहों का-सा रवैया! यह सब क्या है? यह संस्कृति है? कुत्तापछाड़ संस्कृति! अर्द्धशिक्षित राजनीतिज्ञों ने जहां संस्कृति के पहरुओं को नौकर-चौकीदार बना लिया हो, वह कोई दुनिया है?

कहते हैं कि प्राचीन भारत में तपोवन थे। वहां सब अच्छा था! मैं नहीं मानता। तपोवन एक दूसरी ठग-विद्या थी, जहां गुरु अपने शिष्यों की नाक रगड़वाया करता था। और वे प्राचीन विश्वविद्यालय! उनमें भी उन विद्यार्थियों का ज्यादा सम्मान था जो गुरु को शुल्क यानी फीस लाकर देते थे। ऐसी परम्पराएं अभी तक गांवों में रही हैं, जहां पंडित जी बैठे ऊंघते हैं और 'अगल-बगल मंगल करन' कहकर लड़कों से सीधा लिया करते हैं।

मेरा सिर चकरा रहा है। पुस्तकालयों में ढेरों किताबें सजी हैं। मुझे लगता है यह हमारे ज्ञान का सबसे बड़ा उपहास है, क्योंकि उनका प्रयोग जीवन के सुधार के लिए नहीं होता, उन्हें नहले पर दहले की तरह इस्तेमाल किया जाता है। सरकारी कार्यालयों में बुड्ढे प्रोफेसर बैठकर कायदे बनाते हैं, वे प्रोफेसर जिनके दिमाग की लचक खतम हो गई है, जिन्होंने शिक्षा को यांत्रिक बना दिया है, जिनपर यूरोप का हौवा सवार है, जो अंगरेज़ी राज में 'सर' और नये ज़माने में 'देशभक्त' बनते हुए ज़रा भी नहीं झेंपते।

सब गंदा है। क्या करूं? कितना और किस-किसपर थूकूं? मैं कुछ नहीं सोचना चाहता। चलने दो, जो जैसा है, उसे वैसा ही रहने दो। अपना दिमाग क्यों परेशान किया जाए? यह ऐसा ही रहा है और ऐसा ही चलता चला जाएगा। मैंने तो कवि रवीन्द्रनाथ द्वारा स्थापित शांतिनिकेतन

भी देखा है, जहां संस्कृति का आखिरी खंभा कवि ठाकुर को मान लिया गया है। जहां पहले तपोवन की जिंदगी बताई जाती थी, वहां भोजन में चावलों के साथ कंकड़ दिए जाते थे और संस्कृति के नाम पर बोलने भी नहीं दिया जाता था।

यह मैं विक्षोभ में क्या सोच रहा हूं? यह तो बहुत बुरी बात है? पर क्या मैं झूठ कहता हूं? हर जगह प्रान्तीयता यानी भिन्न देशीयता मिलती है। भारत की एकता और यूरोप की एकता में भेद ही क्या है? राजनीतिक स्वार्थों में सत्य नहीं छिपता। धर्म के भेद से जहां देश बनते हों, वहां क्या नहीं हो सकता? राजनीतिक और धार्मिक एकता की बात छोड़ दी जाए तो सचमुच भारत एक है ही कहां?

नहीं, अब मैं कुछ नहीं सोचना चाहता।

'ऐ ज़रा उधर सरक भाई', एक लठैत डिब्बे में घुसकर कहता है।

'मैं कहां जाऊं?'

'ऐ हमें क्या खबर भाई?'

'मेरे पास टिकट है।'

'ऐ टिकट हमारे पास भी है भाई।'

अब कोई चारा नहीं।

ओ मेरे जीवन! घुट! तब तक घुट जब तक तू समाप्त नहीं हो जाता। लेकिन मिटना भी अन्त नहीं है, क्योंकि अतृप्ति में से चेतना का जन्म होता है, जो विद्रोह की लपट बनकर हरहराया करती है। दंभ का देवता तेरे पांवों के पास पड़ा हुआ छटपटाएगा, क्योंकि वह और कुछ नहीं, तेरे मन का ही भय और अज्ञान है। इस गर्मी का अन्त है, यात्रा की मंजिल तक का पहुंचना। पहुंचेगा, इन्सान पहुंचेगा क्योंकि उसने अपने पसीने की कमाई से एक टिकट खरीदा है। और उसके पास यात्रा का अधिकार है। आदमी के पास जब तक चलने की इच्छा है और उसका अधिकार पाने के लिए त्याग करने की क्षमता है, तब तक वह कभी पराजित नहीं कहला सकता। सदा ही संघर्ष बने रहेंगे। मनुष्य की बाह्य परिस्थिति उसके भीतर के संघर्ष के अन्धकार का पर्याय है और लगता है कि बाहर ने ही भीतर को बनाया है। परन्तु अब बौद्धिक दासता के युग का अन्त हो रहा है, धरती

देकर ताल कह रही है, पथ के दु:खभोगी ! कष्ट तब कटता है जब चेतना का जन्म होता है।

पेट

ज़िन्दगी की भूख पुकार-पुकार कर कहती है—गेहूं चाहिए ! गेहूं ! जिसे पंजाबी किसान कनक कहता है। 'कनक' अर्थात सोना। इन्सान गेहूं को सोने से भी कीमती समझता है, क्योंकि उसकी संस्कृति, सभ्यता, प्रेम, विकास जो कुछ भी है इस गेहूं पर निर्भर है। और यह गेहूं आज भारत में कम पड़ गया है।

राष्ट्र के नेता कहते हैं, पैदा करो। गमलों में, टोपियों में, कनस्तरों में, जहां हो सके वहां गेहूं पैदा करो। पर गेहूं पैदा नहीं होता तब भारत की भूखी भुजाएं पहाड़ों और समुद्रों को पार करके भीख मांगने लगती हैं, 'हमें गेहूं चाहिए ! हमें गेहूं चाहिए !'

उस समय अमेरिका में हलचल होती है। सौदागर अपने लाभ की बातें सोचते हैं। वे शर्तें रखते हैं। सोचते हैं, इंसान की भूख अगर उसे भीख मांगने पर मजबूर कर सकती है, तो उसे गेहूं के साथ ऐसी शर्तें खाने को भी विवश कर सकती है जो अन्ततोगत्वा उसके पेट में गचककर रह जाएंगी। हमारे राजनीतिज्ञ वे जो फिर अमीचन्दों का खेल दुहराना चाहते हैं, तार देकर अमेरिका से भीख मांगते हैं, निर्लज्ज होकर सहायता मांगते हैं। तब भी राष्ट्र का सम्मान उसे स्वीकार करता ही नहीं, उसके विरुद्ध पुकार उठाता है। और जवाहरलाल नेहरू की आवाज़ में क्रोध और विक्षोभ फूटकर निकलता है, नहीं चाहिए ऐसा गेहूं नहीं चाहिए।'

और दूसरी तरफ ऐसे भी देश हैं जैसे रूस और चीन, जहां गेहूं इन्सान की भूख मिटाने के लिए है, जहां गेहूं पर सवार होकर शर्तें नहीं आतीं, जहां से आए गेहूं में किसी की मुस्कराहट छिपी रहती है। उस गेहूं में एक समृद्धि है। उस गेहूं को देखकर लगता है यह किसी प्रसन्न पुरुष ने उगाया है, उसकी स्त्री उस समय स्वस्थ हाथों से उसकी बगल में काम कर रही होगी, उसके बच्चों ने किलकिला कर कहा होगा, 'हाय ! किसी देश में लोग भूखे हैं, वहां जल्दी गेहूं भेजो।'

तीनों बातें मेरे सामने हैं। एक कि हमारा देश भूखा है। दूसरे, कहीं का

गेहूं भूख मिटाता है। तीसरे, किसीका गेहूं इन्सान के पेट को बांधने वाली ज़ंजीर बनता है।

और जब मैं तीन बातें लिखता हूं, मुझसे कहा जा रहा है कि मैं ऐसे सामयिक विषय पर लिख रहा हूं जो आज ही आज की समस्या है। इस-पर कोई स्थायी साहित्य नहीं लिखा जा सकता।

लेकिन मैं इसे स्वीकार नहीं करता। कभी-कभी ऐसे कुछ क्षण आते हैं, जो युगों तक परिवर्तन करते हैं।

एक ही आदमी को सूली लगाई गई थी; उस एक का परिणाम गुलामों की नजात साबित हुआ। एक ही आदमी को गोली मार दी गई थी, उस एक का नतीजा हुआ नफरत की जलती हुई मशालें बुझ गईं। सिर्फ बहत्तर आदमियों ने नमक का आन्दोलन शुरू किया था, और उसके अन्त में करोड़ों बिजलियां कौंधने लगी थीं। एक ही बच्चे को सामन्त की गाड़ी ने कुचला था, और उसके फलस्वरूप फ्रांस की गलियों में आज़ादी और बराबरी की पुकार लहू से भीगकर चिल्लाई थी। एक मंगल पाण्डेय के शरीर को गोलियों ने छेदा था, और उसके नतीजे में लाखों की गरज फूटकर निकली थी—दिल्ली चलो, दिल्ली चलो! और एक ही हब्शी को ज़िन्दा जलाया गया था, जब अब्राहम लिंकन ने कहा था—गुलामी को नेस्तनाबूद कर दो। बगावत एक ही लफ्ज़ है। उसकी बुनियाद में ईमान है, उसका फैलाव—इन्कलाब है। उसका नतीजा तख्तों और ज़ुल्मों को पलटने वाली आज़ादी है। हज़ार बार दूध पीकर भी क्या इन्सान एक दिन भी सांप का ज़हर पीना या उससे अपने को कटाना चाहता है। तो साबित हुआ कि यह 'एक बार' भी स्थायी महत्व का है। इसका विरोध नहीं करना ही भूल है। क्योंकि एक ही अमीचन्द ने लालच से जो दस्तखत किए थे, वे करोड़ों की गुलामी का कारण बने; एक ही क्लाइव ने जो छल किया था, वह मुट्ठी भर मसाले के सौदागरों को तीन पीढ़ियों के ऐश दे गया।

तो न एक, चाहे व्यक्ति, चाहे क्षण, चाहे काम; और नहीं दो, वह तो बात की असलियत है, वह शाश्वत है। केटों ने तो ढाई हजार साल पहले रोम में यह आन्दोलन किया था कि रोम की सुन्दरियों ने भारत की मलमल देखकर सारे रोम को लुटवा दिया, रोम की सारी दौलत हिन्द चली गई।

इस पृष्ठभूमि में देखने पर ज्ञात होगा कि यह गेहूं की समस्या हमारे सामाजिक विकास की एक बुनियादी बीमारी है। इंसान इतना स्वार्थी हो चुका है कि वह एक दूसरे की मजबूरी से पूरा फायदा उठाना चाहता है।

अब मैं बृहस्पति के नीतिशास्त्र को पढ़ूं तो शायद इसे मान भी लिया जाए कि यह कूटनीति है, पर वैसे न पाशुपत, न चारवाक, न लकुलीश, न मज़्दा, न ईसाई, न इस्लाम, कोई भी दर्शन या धर्म या मज़हब मुझे यह नहीं बताता कि यह क्यों हुआ ? आखिर क्या हम इसे व्यक्ति का स्वार्थ कहकर छोड़ दें ? साथ ही यह भी तो प्रश्न उठता है कि व्यक्ति में स्वार्थ क्यों है ? क्या कारण है कि रूस और चीन के गेहूं को निचोड़ने पर उसमें से लहू नहीं गिरता ? और क्या कारण है कि अमेरिका का गेहूं आंतों को डराता हुआ आता है ?

तीन प्रश्न थे; हमारे देश में भूख है, क्योंकि हम पैदा नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे पास साधन नहीं है। साधन नहीं है, क्योंकि व्यक्ति का स्वार्थ समाज को यहां बांधे हुए है, अर्थात् धरती का मालिक वह नहीं जो श्रम करता है। अब नये रिवाज में यह ज़मींदारी हट रही है, तब भी धरती का मालिक धरती का मालिक नहीं होगा। दलाल बदल जाएंगे। तब पण्डित नेहरू भले ही सिराजुद्दौला की तरह फिरंगी फौज से लड़ना चाहें, मगर मीर जाफरों की फौज उनका साथ नहीं देगी। उल्टे यह और होगा कि मोह-म्मदी बेग और गोडसे जैसे लोग ज़रूर पैदा हो जाएंगे। अरे, समुद्री तीर पर उगे पटेरों से तो यादवगण का सर्वनाश प्रसिद्ध है, घर के पटेरों को तो कौन संभालेगा !

अभी यह सवाल हल हुआ नहीं कि भूख मिटाने वाला गेहूं मुस्कराया। फिर मुझे उसके पीछे सैकड़ों सुरीले स्वर से गाती स्त्रियां दिखाई दीं, उनकी प्रसन्न आंखों में भी गेहूं का तारा चमक रहा है। वे आंखें जो इंसान से इतना प्रेम करती हैं, कि उन्हें इंसान का रास्ता रोकने वाली हर गलाज़त से उतनी ही नफरत है जितनी एक दूसरे की मजबूरी से पूरा फायदा उठाने वालों को नफरत से मुहब्बत है, जितना प्रेम इन लोगों को घृणा से है।

प्रेम से प्रेम करने वाली आंख का पानी जब घास पर पड़ता है तो ओस का हीरा बनकर चमकता है, जब इंसान पर जुल्म देखता है तो अंगारा बनकर

गिरता है, जब दर्द देखकर गिरता है तो लहू की बूंद बनकर, और जब इंसान को भूखा देखता है तो वह गेहूं बन जाता है। और नफरत से प्रेम करने वाली आंखों का पानी जब घास पर पड़ता है तो घास झुलस जाती है, जब इन्सान पर जुल्म देखता है तो उसमें बर्फ की-सी बेदिल ठंडक आ जाती है, जब दर्द देखकर गिरता है तो बन्दूक की गोली बनकर, और जब इन्सान को भूखा देखता है तो वह गुलामी का दस्तावेज़ बन जाता है।

जिस आंचल के साए में दुधमुंहा अपने फूले-फूले गाल लिए, अधमिची आंखों से नन्हीं-नन्हीं फूलों-सी नाज़ुक हथेलियों को बांधे दूध पीता है, उस आंचल पर गुलामी का दस्तावेज़ लिखा जाएगा, फिर दुधमुंहा क्या पिएगा ? वही जो कोरिया के बच्चे अपनी मुर्दा मां के सीने पर उसका लहू पी रहे थे, यहां भी दुहराया जाएगा।

गेहूं—आज गेहूं नहीं है, वह बन्दूक की गोली है, वह कविता है, वह आज़ादी है, वह गुलामी है, वह लाशों का अम्बार है, या वह करोड़ों हंसते चेहरों की किलकारी है। तीनों सवाल हल हो गए हैं। मुझे किसीके जूते से पिसा गेहूं नहीं चाहिए, मुझे चाहिए वह गेहूं जिसमें से ज़िन्दगी की खुशबू आ रही हो।

७

वहो टोले

एडवेन्चर : साहसानुभव

[पुराने नामों का अभाव है। फिर पाठकों की समझ में बात आती है नये प्रचलित नाम लिखने पर। सो बहुत-से ऐसे नामों का प्रयोग मैंने कर दिया है।]

आकाश में सुनहला तार झनझनाया। नाग बन्धक ने पुकारा, 'रक्तजिह की जय! गरुड़ परास्त हो, पंख समेटकर चला गया।'

मैंने अपने तम्बू से निकलकर देखा। सारा सार्थ लगभग चल पड़ने को तैयार ही था। मैंने बन्धक को बुलाया और कहा, 'नाग, यह पांच नदियों का देश[1] तो बड़ा समृद्ध है। यहां हमने काफी सुवर्ण कमाया है। अब हम शियान्त[2] की ओर चलें।'

नाग ने सिर झुकाया और कहा, 'हम अपने निनैवे में होते तो कभी के पहुंच गए होते।'

सम्भवतः उसे अपने देश के दो पहिए वाले घोड़े के रथ का ध्यान आ रहा था।[3] वृषभ, तूफानों का देवता, हमारी रक्षा करे। महामाता जीवन दे! अपने पक्षी की ओर मधुर मुस्कान से देखे!

न जाने क्यों मुझे मृत्यु का स्मरण हो आया। कितना परदेश! यहां

---

१. तात्पर्य हरप्पा से है

२. हौज्नी के आधार पर सम्भवतः सिन्धु देश का पुराना नाम

३. एन्शेन्ट हिस्ट्री आफ वेस्टर्न एशिया, इण्डिया एण्ड क्रीट—बेडरिख होज्नी, पृ० २५ के आधार पर

यद्यपि हौज्नी के अधिकांश मतों से मेरी सहमति नहीं।—लेखक

मृत्यु ? होती अपने घर, तो वे मुझे शांति से आलथी-पालथी लगाकर बिठा देते कब्र में, सदा के लिए, और मैं मृत्यु के उपरान्त नूतन जीवन में प्रवेश करता। सुमेरु, किश, अर, एलाम और नाल होता हुआ यहां कितने दिनों में पहुंचा हूं !

मेरी तृष्णा निरन्तर बढ़ती गई है। यदि मैं अपार धन एकत्र कर सका तो ! क्या मिस्र के फराऊन की भांति मैं भी देवता के समान सम्मान पा सकूंगा ? दजला-फरात से सिन्धु तक चलते इस अखण्ड व्यापार का मैं भी एक भागी हो गया हूं। किन्तु महामाता के उपासक ये लोग मुझे कुछ भिन्न-से लगते हैं।

यातुधान किंकर कहता था कि वह राक्षस था और शियान्त जा रहा था जहां वह विशाल मन्दिर में अपने लिंग देवता की उपासना करेगा। उसने बताया था कि वह हिमालय से शियान्त में देवदारु पहुंचाता था। वहीं यक्षजाति भी थी जो हमारी भांति ही महामाता की योनि पूजा करती थी। उसीने बताया था कि उसके देश के पूर्व में अभी भी नरभक्षी लोग रहते हैं। मैंने जब पूछा था कि शियान्त के पश्चिम में जो मरुभूमि है[1] उसके भी पश्चिम में क्या है, तो उसने कहा था कि वह नहीं जानता। अरब के तीर पर मुझे गोदावरी के नाविक मिले थे। वे बिताते थे कि वहां दानव और नाग रहते हैं, किन्तु मेरा बन्धक तो किसका नाग है। उन नागों के बारे में तो वह नहीं जानता। द्रविड़ों की बात मैं नहीं कहता, उसके पास अपार धन है। वे सांवले रंग के हैं और सुनते हैं उनका हिताइत और मितन्नियों से भी सम्बन्ध है। नाग बन्धक ने कहा था कि सुमेरु में उसने सिंहमुख देवता की उपासना देखी थी। दजला-फरात के पास के नगरों में स्वयं मैंने कुमारियों को विवस्त्रा खड़े होकर विवाह के लिए तरुणों को आमन्त्रित करते देखा है।

नाग बन्धक ने आकर कहा, 'स्वामी ! शियान्त जाता हुआ मुझे एक युवक मिला है। वह वहीं का निवासी है और यहां पांच नदियों के देश में आया था। वह कहता है कि इस नदी से उस नदी तक सब एक-से लोग रहते हैं।

१. राजपूताना

वह मोहन-जो-दड़ो का निवासी नहीं, चन्दु-जो-दड़ो का है।'

मैंने कहा, 'उसे बुला तो।'

वह आया। प्रणाम किया। उसमें एक सहज गर्व था, जैसे वही सभ्य था, हम सब कुछ नहीं थे।

मैंने पूछा, 'मित्र, तुम्हारा नाम ?'

उसने बताया, 'मैं रत्नों को काटनेवाला इयाह हूं।'

'स्वागत ! अब कहां चल रहे हो ?'

'घर जा रहा हूं। वहीं जहां सुन्दर नगर है, परिष्कृत समानान्तर पथ हैं, जहां भीतों पर मनोहर चित्र बनाए जाते हैं, पुरुष और स्त्रियां अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनते हैं।'

मैंने देखा। तरुण की बालों की चुटिया पीछे गुंथी लटक रही थी। उसके कन्धे पर चादर पड़ी थी। मूछें उस्तरे से साफ थीं और काली घनी दाढ़ी दिख रही थी। वह कहता गया, 'वहीं जहां नदियों की सिंचाई से गेहूं होता है, सफेद···उजला···उजला···'

मेरी कटि में खड्ग देख उसने कहा, 'शियान्त में नागरिक शासन-व्यवस्था बहुत अच्छी है। इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। नगर का गण-स्वामी एक विशाल भवन में रहता है, वहां नगर का नाज इकट्ठा कर दिया जाता है।[1] देवता के नाम पर कोई उस ठौर का अतिक्रमण नहीं करता।[2] पहले कुछ वन्य बर्बर लूटने आते थे, पर अब तो विशाल प्राकार बन गया है नगर का।'[3]

'तो क्या तुम्हारे देश में धनी और दरिद्र नहीं ?'

'क्यों नहीं ? दोनों हैं। दरिद्र अधिक हैं, धनी कम हैं।'

वह कुछ हतप्रभ हुआ। मैंने कहा, 'मैंने भी सुना है कि तुम्हारा देश बड़ा समृद्ध है। नगर बड़ी योजना से बनाया गया है। तुम्हारे देश के तरुण

---

१. ह्वीलर एन्शेन्ट इण्डिया III, १९४७, पृष्ठ ६१-७६

२. वही

३. वही

बड़े शक्तिवान हैं। नालियां भूमि के भीतर बनाई जाती हैं। कैसे बनाते हैं उन्हें ?'

'पक्की ईंटों से।' उसने कुछ मुस्कराकर गर्व से कहा, 'नगर में अफ्रीका, चीन और बाहर के बहुत लोग आते हैं। कीकट और अन्य बर्बर देशों के लोग भी आते हैं। हमारा पशुधन देखकर उन्हें आश्चर्य होता है।'

बन्धक के आ जाने से बातचीत रुक गई।

हम चल पड़े।

२

यह शियान्त है।

इसकी समृद्ध हाट में मैं खड़ा हूं।

सुदूर कैस्पियन सागर से चीन तक के, फिनिशियनों से गोदावरी के दानवों तक ही नहीं, नीलगिरि पर्वत तक के लोग यहां मंगोल चीनी से कंधा मिलाकर चलते हैं।

परन्तु मैं जानता हूं।

संसार में अनेक जातियां हैं। इनको अलग-अलग देवताओं ने बनाया है। वे अलग-अलग देवताओं की संतान हैं।

मैं यहां देख रहा हूं—चांदी, रांगा, तांबा, सोना, मणियां। यहां क्या नहीं है ? सुन्दर बर्तनों पर बेहतरीन तस्वीरें बनाई गई हैं।

बन्धक ने आकर कहा, 'स्वामी !'

मैंने मुड़कर देखा।

'स्वामी ! वह इयाह बड़ा चतुर है।'

'क्यों ?'

'वह मन्दिर में चला गया है और कह गया है कि आपको वहां ले आऊं।'

'क्यों ?'

बन्धक कुछ हतप्रभ हुआ।

'स्वामी ! वह महादेव देवता के त्रिशूल के आगे बलि देगा और आपके लिए तावीज बनाएगा।'

'चलूंगा,' मैंने कहा।

वह चला गया। मैं नगर में घूमने लगा। एक स्त्री को देख मुझे कुतू-

हल हुआ। उसके हाथों में चूड़ियां थीं। कुछ शंख-सीप गले में लटके थे। उनके बीच में चांदी और सोने की कई हंसुलियां थीं। सुनहले फीते से उसके बाल बंधे थे, सीना खुला हुआ, कटि पर जंघाएं भर ढंकता एक वस्त्र।

मैं उसके पास गया। फूल बेचने वाले लड़के उससे मज़ाक कर रहे थे।

मैंने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

स्त्री ने उत्तर नहीं दिया, केवल आंखें फाड़कर देखती रही। एक सुगन्धि बेचने वाला दूकान से उतर आया और हाथ पकड़कर मुझे हटा ले गया।

मैंने कहा, 'क्यों-क्यों ?'

'हां, तुम विदेशी हो न ? मैं तुम्हारी बोली से जान गया।' उसने बड़े आत्मविश्वास से कहा। फिर कहा, 'वह स्त्री वेश्या है, उसे एक मिस्री से प्रेम हो गया था। वह हापी (नील नदी) का मांझी था जो पोत पर एक व्यापारी के साथ आया था और चला गया। यह मूर्ख स्त्री उसीकी याद में रोती है। तुम उसकी चिन्ता मत करो।'

मैंने पूछा, 'तुमने कैसे जाना मैं उसकी चिन्ता कर रहा था ?'

वह व्यक्ति उदास-सा हट गया। मैं फिर उस स्त्री के समीप गया। उसने मुझे देखा और कहा, 'परदेशी, इस महानगर पर महानद बार-बार उफनकर आता है। हर बार लोग पहले से ऊंचाई पर मकान बनाते हैं, किंतु मैं भी क्या ऐसी ही नहीं हूं ? मैं भी तो आंसुओं की हर बाढ़ के बाद अपनी आशा को उतनी ही ऊंचा ले जाने का यत्न करती हूं। वह मिस्री क्या सचमुच लौट आएगा ?'

उफ ! तब मुझे लगा कि स्त्री देवी ही होती है। तभी तो उसके हृदय में इतना प्रेम होता है। स्त्री में दो ही चमत्कार हैं, प्रजनन और हृदय ! ममता ! महामाता ! महादेवी !

मैंने उसे देखा और कहा, 'पुरुष चला गया, पर मेरे देश के पुजारी कहते हैं, सब कुछ स्त्री में से आता है; स्त्री में ही लौट जाता है।'

मेरे कन्धे पर किसीने हाथ रखा !

'कौन ?'

'इयाह।'

'तुम यहां कैसे आए ?'

'मैं तुम्हें देवता की प्रसन्नता दूंगा। तुम्हारे पास अपार धन होगा। मैं तुम्हारे लिए एक तावीज बनाऊंगा। तुम इस नग्नी से क्या बातें कर रहे हो ?'

हठात् उसकी दृष्टि स्त्री पर अटक गई। उसने बढ़कर स्त्री को वक्ष से लगाकर कहा, 'अरे ! तू कब से यहां आ गई ?'

स्त्री मुस्कराती हुई चली गई।

पता चला, वह उसकी पड़ौसिन थी। कभी देवी के मन्दिर में चढ़ा दी गई थी। फिर अपराध होने पर निकाल दी गई। उसे दण्ड दिया गया था। जब तक नर-बलि के लिए अपने किसी प्रेमी को नहीं लाएगी तब तक मन्दिर में फिर न जा सकेगी।

मैंने देखा और इयाह से कहा, 'चलो।'

३

वह दुकान थी। सुमेरु के असुर बैठे मदिरा पी रहे थे। हम भी बैठ गए। इयाह ने मदिरा-पात्र उठाने वाली स्त्री को इंगित किया। वह मदिरा ले आई। फिर हमने भेड़ के चमड़ों पर बैठकर तरह-तरह के मांस, गेहूं की रोटियां, शहद, मदिरा, और मसालेदार मछलियों का भोजन किया। इयाह ने ही मूल्य चुकाया।

वन्धक डेरे पर चला गया। हम नगर में घूमते नगरपति के दुर्ग की ओर चले। दूर ही से पाषाण का वह कठोर दुर्ग देखा जिसमें नगर का अनाज रखा जाता था, और तब सांझ के समय हम मन्दिर में पहुंच गए।

प्रांगण में पीपल के विशाल वृक्ष के नीचे मैंने देखा, एक मोटा व्यक्ति बैठा दही और मछली खा रहा था। उसके सामने एक स्त्री अधलेटी-सी, मदिरा पी रही थी। उसकी देह पर वस्त्र नाम को ही था।

इयाह ने पुकारा, 'यक्ष ! आज तुम्हारा वृक्ष-देवता क्या कहता है ?' फिर मुझसे कहा, 'यह बहुत अच्छा ज्योतिषी है। शियान्त के लोगों ने नक्षत्र विद्या खूब सीखी है।'

हम यक्ष के पास गए। अब हमने देखा. वहीं एक मुर्गा भी बंधा हुआ था।

स्त्री मुझे देखते ही उठकर बैठ गई और पूछने लगी, 'इयाह, यह कौन है ?'

'परदेशी।'

वह मुस्कराई।

इयाह ने कहा, 'यक्ष ! वृक्ष-देवता बोलेगा कुछ ?' यक्ष ने अपने पैने दांतों और लाल-लाल आंखों को चमकाकर कहा, 'आज नग्नी किशी मन्दिर में लौटेगी। देवता महादेव की नर्तकी बनकर।'

'यह तूने ज्योतिष से कहा ?'

'नहीं,' स्त्री बोली, 'वह मुझसे मिलने आई थी।

'तुझसे ? क्या उसे नर-बलि मिल गई ?'

'हां।'

'कौन है ?'

'एक परदेशी नाग।'

वे हंसे। मैं सतर्क रहा।

'वृक्ष-देवता,' यक्ष ने कहा, 'यही नहीं है इयाह ! सारा संसार एक वृक्ष है।'

'संसार वृक्ष है ?' इयाह ने पूछा।

'हां, यह ऊर्ध्वलिंग-सा है। इसकी जड़ें धरती में हैं। पत्ते-शाखा ऊपर हैं। यह बीज से जन्मा है, बीज इससे जन्मता है। समझता है न ? सारा संसार ऐसा ही है।'

'नहीं।'

'तू नहीं समझेगा।' यक्ष ने कहा, 'इस वृक्ष के तने में देवता रहता है।'

'नग्नी किशी आ गई !' स्त्री ने कहा।

मैंने देखा। वही वेश्या थी जो पथ पर रोती मिली थी। उसने मस्तक पर लाल रंग-सा लगा रखा था। इस समय उसकी देह पर कटि-वस्त्र भी नहीं था। बोली, 'नदी-तीर पर चलो। दानव पुरोहित बलि देगा।'

मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। हमारे देश में भी बलि देते हैं।

'कब ?' इयाह ने पूछा।

'रात को अंधेरा होने पर।'

'हम आ जाएंगे।' इयाह ने कहा।

'उधर आना, महादेव-पुत्र के मन्दिर में।'

मैंने कहा, 'इयाह! मैं व्यापार करने आया हूं। पहले नगर देख लें, चलो।'

यक्ष ने कहा, 'देख लो पर देवता का अपमान न करना।'

मैंने कहा, 'नहीं, अवश्य आजाएंगे।'

मन्दिर के बीच में मैंने जाकर देखा त्रिमूर्ति महादेव, विकराल मुख प्रचण्ड भ्रू।

जय महादेव! तू ही महादेवी में जीवन का बीज स्थापित करता है। वह ही सजृन करती है। हे परम देवता! तू ही लिंग है। तू ही सर्वत्र व्याप्त है, अपनी प्रिया के साथ। क्योंकि तुम ही दोनों के चिह्न यह सम्पूर्ण प्रजा धारण करती है।

तू स्वयं संहार है, महानाश है! तू ही सबकी मृत्यु है। रोगों का तू ही वर्षण करने वाला है! तू ही वृषभ है, अतः तू ही शृंग धारण करता है, क्योंकि तू ही सबको धारण भी करता है।

तू विभीषण है। स्वस्तिक तेरी महागति का चिह्न है, क्योंकि वह दिशाओं में व्याप्त है। तू ही चन्द्रमा को शृंग बताकर सिर पर रखता है। जय महादेव! जय महादेव!

हमने झुककर प्रणाम किया।

नग्न युवतियां मदिरा पीकर मदमस्त-सी नृत्य करने लगीं। पुरुष देवता इससे प्रसन्न हो सकता था। मुझे याद आया, अनेक पशु-मुख धारण करने वाले देवताओं के सामने मिस्र में भी युवतियां ऐसे ही नृत्य करती थीं।

घनघन नाद करके घण्टे बजते रहे। हम निकल चले। एक ओर उंगली से इशारा करते इयाह ने कहा, 'वह कौन है, जानते हो?'

मैंने देखा, आलथी-पालथी लगाए एक नग्न पुरुष, कटि पर कौपीन मात्र।

'कौन है?'

'योगी, त्यागी। वह आत्मा को शान्त करता है।'

'आत्मा तो देह में रहती है। मरने पर भी तो आत्मा अपने साथ कब्र

में देह समेत रहती है, सारे लौकिक भोगों को भोगती ! एक दिन जब न्याय होगा······।'

'हां,' इयाह ने बीच में ही कहा, 'शियान्त के दार्शनिक नहीं मानते। वे कहते हैं कि देह छोड़ देने पर आत्मा का शरीर नहीं रहता। वह 'काम' हो जाती है, जैसे देवता 'काम' होता है। और आत्मा को अहिराज के शासन में रहना पड़ता है। वह नरक और स्वर्ग में जाती है।'[1]

'स्वर्ग मैं जानता हूं। जहां पूर्वज आनन्द करते हैं, देवी-देवताओं के साथ रहते हैं, अमर हो जाते हैं। पर यह नरक क्या है?'

'चलो तुम्हें बताऊंगा।'

इयाह ने मुड़कर शंख बजाते हुए पुरुष को हाथ जोड़े, और कहा, 'चलो, किशी से मिलना है। उधर ही से चलेंगे।'

इयाह मुड़ गया।

मैंने देखा। सुदूर तक भवन ही भवन खड़े थे। कितना वैभव; देवताओं का-सा नगर!

'मैं स्नानागार चलूंगा कल।'

'वह दूसरी ओर है। अभी हमें दक्षिण को चलना है।'

हमने पक्की ईंटों के दीवारों की पास कुएं पर पानी खींचते दासों को पीछे छोड़ दिया। फिर विशाल राजपथ पर आ गए, जो दक्षिण-उत्तर को मिलता था। वहां रथ चल रहे थे। बैल उन्हें खींचते थे। वैभवशाली स्त्री-पुरुष उनपर सवार थे। हाटों में सुगन्धि थी। अनेक विदेशी भी वहां घूम रहे थे। दास रथों के आगे रास्ता बनाते चलते थे। एक बच्चे के हाथ में एक खिलौना था। खिलौना पशु की आकृति का था, जिसका सिर वह डोरे के सहारे से खींचकर हिला-हिलाकर प्रसन्न हो रहा था। एक कोने पर छः आदमी चौपड़ खेल रहे थे। जब पांसे गिरते, वे घोर कोलाहल कर उठते। एक स्त्री हांथीदांत के कंघे के दोनों तरफ के दांतों को उंगलियों से साफ करती बैठी थी। दूसरी पास बैठी कान कुरेदनी से कान कुरेद रही थी। भीतों पर एक शृंगी वृषभ के चित्र बने थे।

---

१. देवताओं का वर्णन गोर्डन चाइल्ड के 'न्यू लाइट ऑन द मोस्ट एन्शेन्ट ईस्ट', पृ० १७६-२०६ के आधार पर किया गया है

इयाह के भुज पर बंधा चरणपादुका वाला तावीज़ दीपों के प्रकाश में कभी-कभी झिलमिला उठता था। हम सुण्डे वाले बैल के पास बना स्त्री-सिंहनी देवी की मूर्ति के पास से बढ़कर मोड़ पर पहुंचे। अब वह विशाल भीड़ छंट गई। हमने जगह-जगह लिंग देवता, योनि देवी और नाग की आकृतियां देखीं। और फिर हाथी, गैंडा, सिंह आदि के चित्रों से घिरे विकराल महादेव के चित्र को पार करके, पक्के घरों की पंक्तियों के बीच से हम दूसरे पथ पर आ गए जो राजपथ के समानान्तर था, पर उससे कम चौड़ा था। दाएं मुड़कर जब हम बाएं को निकली दूकान के पास पहुंचे, इयाह फिर संकरे पथ से दाएं को मुड़ा और हम एक चौड़ी-सी जगह में निकल आए। काफी मकानों के बीच से गुज़र हम जब तीसरे समानान्तर पथ पर आए, अंधेरा हो गया था। अब वह बाएं को मुड़ गया। और हम खुले भू-भाग से निकलकर नगर पीछे छोड़ आए। अब नद-प्रान्त प्रारम्भ हो गया था। जिसमें हरियाली छा रही थी।

४

'चलो परदेशी।'

कीशी, यक्ष, उसके साथ वाली स्त्री और दानव पुरोहित पीपल की छाया में खड़े थे। इयाह मुझसे कुछ कह रहा था।

परन्तु मैं सिर झुकाए बैठा था। वे सब देख रहे थे, जैसे मेरे दुःख को समझ नहीं पा रहे थे। नर-बलि दी जा चुकी थी। किशी देवमन्दिर में जाने की अधिकारिणी हो गई थी। मुर्गे का भुना मांस चबाता यक्ष कभी-कभी वृक्ष को सिर झुका देता था। और मैं चुप बैठा था।

मेरे सामने दो ही वस्तु थीं। महादेव की विकराल मूर्ति, जिसके पीछे सिंह का शरीर और स्त्री के मुख वाली देवी त्रिशूल लिए अंकित थी। और सामने था एकान्त भरा सूना अन्धकार जो बन्धक का शव लिए सांय-सांय कर रहा था।

वे सब चले गए।

अन्धकार में गीदड़ों की 'हुआं-हुआं' सुनाई पड़ती थी। बन्धक का सिर अलग था, धड़ अलग।

पत्ते खड़खड़ाने लगे।

मैं चौंका। क्या कोई वन्य पशु है ?

देखा। एक नग्न पुरुष था। उसके सिर के बाल बढ़े हुए थे, दाढ़ी भी।

उसने पुकारा, 'कौन ?'

'परदेशी।'

वह हंसा।

उसने कहा, 'बलि। बलि दी गई है ?'

'हां,' मैंने भर्राए गले से कहा।

उसने कहा, 'सारे देवता मनुष्य को सुखी नहीं कर सकते, यह सारा नगर एक दिन नष्ट हो जाएगा, क्योंकि यहां अहंकार और पाप बढ़ गया है। मनुष्य नंगा जन्मा है, वह नंगा नहीं रहता; वह धन क्यों जोड़ता है, तभी पाप करता है…'[1]

वह अंधेरे में खो गया। सम्भवतः वह कोई द्रविड़ था।

मैं उसके पीछे भागा। मैंने कहा, 'उसे जिला दो। वह मेरा प्रिय बान्धव था। वे पशु हैं जिन्होंने उसे काट डाला।'

'आत्मा,' द्रविड़ ने कहा, 'नरक में जाती है, जहां उसे दण्ड मिलते हैं। काटने वाला वहीं जाएगा। कटने वाला स्वर्ग…'

मैं उसके साथ न भाग सका, वह वन में छिप गया। मैं स्तम्भित खड़ा रहा। घने अन्धकार में महानगर ऐसे छिप गया था जैसे वहां था ही नहीं, केवल सिन्धु नद का अनवरत गर्जन सुनाई पड़ रहा था। और केवल विकराल देवता-सा आकाश और पृथ्वी के बीच जबड़े फैलाए अन्धकार सांस ले रहा था। मैं महानगर की ओर चल पड़ा।

दूर कहीं तारों का बाजा बज रहा था। एकान्त में मैं उधर ही चल पड़ा। मन कहने लगा—यह सृष्टि कितनी पुरानी है? मनुष्य कब तक दुःखी रहेगा। तारे मुस्कराए। मैंने बन्धक की याद के आंसू पोंछ दिए।

---

१. दुःखवादी चिन्तन का मूल प्रकरण; वैभव का प्रसाद। उसका प्रारम्भ जो आगे चलकर जैन चिन्तन बना

८

अभी और शेष

संस्मरण

मैत्रेयी भी जा रही है ? उसका पति याज्ञवल्क्य संन्यासी हो रहा है न ? सचमुच मैत्रेयी सुखी हुई, यह मैं क्या वाक्य सोच रही हूं ? मैं क्या जीवन भर सफलता की सीढ़ियों पर ही नहीं चढ़ती रही हूं ? कौन हूं मैं ?

हां, मैं उसी वचक्नु की पुत्री हूं, वाचक्नवी गार्गी।

जिस दिन आंखें खोली थीं और तपोवन के फूलों पर मेधावी ऋषियों के सामगान की सुनहली धूप पड़ते देखी थी, मैंने पञ्चाल और मद्र की सुन्दरियों की भांति कल्पना की थी कि मैं भी दास-दासियों से घिरी हुई, किसी परम विद्वान ब्राह्मण की पत्नी बनकर मधुर-मधुर मुस्कराते हुए जीवन व्यतीत कर दूंगी। लेकिन पिता को तो यह स्वीकार न था।

उन्नत घोष, प्रशस्त ललाट, भव्य गौर, स्थिर दृष्टि, श्वेत श्मश्रु, हंस-पंख-सा अधोवस्त्र, कन्धे पर मृगचर्म—पिता का वह रूप मुझे याद है। उस दिन मद्र से ब्राह्मण पतञ्चल काप्य के यहां से किसी सार्थ के साथ घूमते हुए ब्रह्मचारी आए थे। पौतिमाष्य, गौपवन, कौशिक, कौण्डिन्य, शाण्डिल्य, अग्निवेश्य, शैतव, गार्ग्यायण, माध्यन्दिनायन, सौकरायण, विदर्भी कौण्डिन्य, दध्यङ्ङाथर्वण और विप्र-चित्ति। न जाने कितने विद्वानों के विषय में उन लोगों ने बातें की थीं। मैं पिता की लाड़ली, सोचती हूं, यह सब क्या ठीक ही हुआ ? क्या यही नारी-जीवन की सार्थकता थी, या हो सकती है ?

सचमुच, मन में न जाने क्यों यह तृप्ति नहीं आती। माता जीवित रही होती, तो क्या मैं यही होती जो आज हूं ?

पिता ने कहा था, 'ब्राह्मण फिर भी ब्राह्मण ही है। ब्रह्म का वही प्रति-

निधि है। मेरे पुत्र नहीं है, तो न सही। यह पुत्री तो है। फिर यही मेरे अपूर्ण स्वप्नों को साकार करेगी।'

उफ! आज जो मुझे यह गौरव प्राप्त होता है, वैसे मैं इसका मूल्य अधिक नहीं लगाती, क्योंकि मेरे जीवन की महत्ता अब मूर्त रूपों में जाकर घिर नहीं पाती; पर देखती तो हूं न? वाल्हीक, गान्धार, मद्रशाल्व, पञ्चाल, काशी, कौसल, मिथिला—सर्वत्र वाचक्नवी गार्गी का नाम श्रद्धा से लिया जाता है। परन्तु इसकी पृष्ठभूमि के वे दिन! वही स्नेह के प्रति-रूप पिता पढ़ाते समय ऐसे कठोर न जाने कैसे हो जाते थे। ब्राह्म-वेला में उठती थी। वेदों को समग्र रट डाला, व्याकरण पढ़ डाला; वे अनेकों कठिन विद्याएं जाने कैसे आत्मसात होती गईं। पिता के सामने बैठी मैं उनके उपदेशों से ऐसी ही बढ़ती गई, उज्ज्वल होती गई जैसे उनके हाथ से यज्ञकुण्ड में डाले गए घृत से उनका अग्निहोत्र धधकता चला गया। और अन्त में मेरा नाम दिगन्तों में प्रतिध्वनित होने लगा। ब्रह्मवादिनी तो अन्य स्त्रियां भी थीं, परन्तु मेरा जैसा था किसका गौरव?

काशिराज अजातशत्रु को देने वाले दृप्तिवालान कि गार्ग्य, जारात्कारव, आर्तभाग, भुज्युलाह्यायनि, केहाल कौषीतकेय, उषस्त-चाक्रायण, आरुणि, उद्दालक और विदग्ध शाकल्य जैसे महामेधावी ऋषियों से मिथिलानरेश ब्रह्मवादी अश्वल जनक की सभा भरी पड़ी थी। कुरु-पञ्चाल के गर्वीले ब्राह्मण उपस्थित थे। जब मैंने घोषणा की थी कि यदि याज्ञवल्क्य मेरे प्रश्नों का उत्तर दे गया, तो और कोई उसे जीत नहीं सकता, उस समय याज्ञवल्क्य के इतने प्रतिस्पर्धी भी मुझसे उलझने का साहस नहीं कर सके। सचमुच वह महामहिम याज्ञवल्क्य भी मुझे उत्तर देते-देते अचकचा गया था। ऐसी हूं मैं वाचक्नवी गार्गी। लेकिन फिर भी मुझे पूर्ण शान्ति प्राप्त नहीं हुई जो इस ज्ञान के भार का उत्तरदायित्व होना चाहिए था।

अब मैं यौवन के कगारे दूर छोड़ आई हूं। जीवन भर लपट-सी दीप्त रही, आर्यों के तरुणों ने केवल मुझे प्रणाम किया, दास-दासी, पुष्कलधन, गाएं सब कुछ हैं। परन्तु एक अछूती लौ-सी आज तक भी मैं निष्कम्प हूं। मुझे छूने का साहस कौन करेगा?

निर्धूम ज्वलन-सी मैं पृथ्वी और आकाश को बांधती रही हूं? परन्तु

आज मैत्रेयी जा रही है, यह सुनकर मुझे यह कैसी अतृप्ति ने आ घेरा है? जी करता है मैं भी चली जाऊं। किन्तु कहां? मेरा यह भोग्य क्या मेरा वैराग्य नहीं है? इतने दिन से जो लिप्त हूं, तो क्या यह लिप्ति मेरा एकान्त ही नहीं है? और क्या थी मेरी भूख!

कैसा था वह आलोक, मैं जिसकी ओर आकर्षित हुई थी? वह था ऐसा, जिसके सम्मुख यह प्रचण्ड सूर्य भी एक जुगनू की भांति मन्द और निष्प्रभ था। वह हंसस्वरूप अग्नि था, जल में स्थित मात्र। उसको समझने की बात क्या सहज थी? निष्कल, निष्क्रय, शान्त, निर्दोष, निरञ्जन, अमृतपरम, सेतुरूप, जले हुए ईंधन जैसी अग्नि। उसके अतिरिक्त और कोई पथ भी ता नहीं। कहते हैं, प्राचीन काल में देवकीपुत्र कृष्ण को घोर आङ्गिरस ने बताया था कि सूर्योदय से सूर्यास्त तक सकल चराचर में एक सामसंगीत ही प्रतिध्वनित होता रहता है। कितनी बार सुन चुकी हूं उसी हिंकार को उठते हुए बादलों में।

पूर्ण की तृप्ति पूर्ण में ही बताई जाती रही है और वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान की तन्मयता ने मुझे विज्ञान की ओर प्रेरित किया। किन्तु विज्ञान से श्रेष्ठ निकला बल। बल से भी उत्कृष्ट निकला अन्न। अन्न से बढ़कर था जल। वही तेज हुआ, आकाश हुआ और आत्मा का सत्य बंट गया। शरीर और आत्मा की पूजा का अकह आनन्द आसुर वैधान बना। देवों ने तप को स्वावलम्बन दिया। दान, दमन और दया के त्रिविधात्म में मानव का एकात्म बंध गया। यज्ञहय होकर देवताओं को, बाजि होकर गन्धर्वों को, अर्वा होकर असुरों को, और अश्व होकर मनुष्यों को वहन करने लगा। समुद्र उसका उद्गम बना। मृत्यु से शून्य में क्षुधा उत्पन्न हुई, जो स्वयं मृत्यु थी। संकल्प ने आत्मा को बनाया। जल और अग्नि एक रूप बना।

किन्तु यह सब क्या है? लोक का सत्य तो मुझे और ही कष्ट दे रहा है।

यह संसार न जाने कितना पुराना है। कौन जानता है इसका आदि और अन्त! इतना जानती हूं कि क्षत्रियों में ऋषभदेव और अरिष्टनेमि के उपदेशों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। अनार्य नाग और श्वेतद्वीपी वैष्णव नये-नये मार्ग फैला रहे हैं। महादेव के उपासकों की ब्राह्मण और क्षत्रियों में गणना बढ़ती जा रही है। सिन्धु सौवीरों की

भांति जगह-जगह एकराट् समाप्त होता जा रहा है और गण उठने लगे हैं। अयोध्या के प्राचीन रघुकुल के स्थान पर क्षत्रियकुल ब्राह्मणद्रोही गण स्थापित करना चाह रहे हैं। जिनानुयायी दासों की समानता का उद्घोष करते दक्षिण में विदर्भ तक उतरते चले जा रहे हैं। और दास !

युग का अर्थ है परिवर्तन ! अविश्वास ! पूर्वज जिस वैभव और विश्वास से रहते थे, वह सब कुछ नष्ट होता चला जा रहा है। क्षत्रिय अश्वलजनक कभी याज्ञवल्क्य को उपदेश देता था, कभी ग्रहण करता था।[1] अब मेरे पिता का वह स्वप्न कहां रहा !

फिर इस जीवन का सत्य क्या है ?

और यही सोचते हुए मैं अपने बारे में भी सोचती हूं।

२

टिट्ट्वी !

टिट्ट्वी !

वृक्षों की सघन छाया में कितनी निस्तब्धता है। दूर तक फैला हुआ है मेरा यह तपोवन ! दास-दासी लगे हैं कहीं दूर ! चला गया है वह अतीत जब अश्वमेधों के गर्जन से आकाश फटते थे। अम्बरीष, मन्धाता, दुष्यन्त, भरत, राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, एक-एक कर न जाने कितने इस पृथ्वी पर आए और चले गए।

गन्धर्वों की पवित्र अग्नि पुरुरवा के यज्ञकाष्ठ में अन्तर्हित हो गई। कितना विशाल इतिहास था, जो आया और चला गया। हम पूछते रह गए, सब कहां चले गए। केवल एक तथ्य मिला कि वह 'परम' सबका हन्ता है। ब्रह्म और क्षत्र स्वयं उसका भोजन है। मन से जात चन्द्रमा और चक्षु सूर्य वाला वह सहस्रशीर्ष, सहस्रपाद विराट् भी आकर आत्मा में सीमित हो गया।

और यही सोचती हूं। जब जारत्कारव आर्तभाग ने कहा, 'हे याज्ञवल्क्य, यह बता कि जिस समय इस मृत पुरुष की वाणी अग्नि में लीन हो जाती है, प्राणवाक् में, चक्षु आदित्य में, श्रोत्र दिशा में, शरीर पृथ्वी में,

१. ब्राह्मण साहित्य में याज्ञवल्क्य जनक का शिष्य बन जाता है, उपनिषद् साहित्य में वह सिखाता है

हृदयाकाश भूताकाश में, रोम ओषधियों में, केश वनस्पतियों में लीन हो जाते हैं, और रक्त और वीर्य जल में स्थापित हो जाते हैं, तब यह पुरुष कहां रहता है ?' तब याज्ञवल्क्य ने उसका हाथ पकड़कर कहा था, 'प्रियदर्शन आर्तभाग, तू मुझे अपना हाथ पकड़ा, हम दोनों एकान्त में इसपर विचार करेंगे ।'

किन्तु वे कर्म तक ही पहुंच सके ।

सारे दर्शन का मूल्य मेरे भौतिक अस्तित्व पर ही अपना दबाव क्यों डालता है ? वायु ही व्यष्टि और समष्टि बनकर पुनर्मृत्यु को जीतता है । सर्वान्तर केवल आत्मा है । एषणा से परे मुनित्व है और उससे भी परे मौन और अमौन को त्यागकर ब्राह्मणत्व है । जल वायु में ओतप्रोत है, वायु अन्तरिक्षलोक में, वह स्वयं गन्धर्वलोक में, और वह है आदित्यलोक में, आदित्यलोक ओतप्रोत है चन्द्रलोक में, चन्द्रलोक ओतप्रोत है नक्षत्रलोक में, नक्षत्रलोक इन्द्रलोक में, इन्द्रलोक प्रजापतिलोक में, जा है व्याप्त ब्रह्मलोक में ! और वह ? याज्ञवल्क्य ने ठीक ही कहा था कि वह सब अक्षर में है । उसीके शासन में द्युलोक और पृथ्वीलोक हैं, 'सकल' हैं । इस अक्षर को जानकर मरने वाला ही 'ब्राह्मण' है । किन्तु जब उसने पूछा कि मृत्यु के उपरान्त पुरुष को कौन उत्पन्न करेगा, तब कुरु-पञ्चाल के अभिमानी ब्राह्मण भी उत्तर न दे सके ।

क्यों ? क्योंकि आत्मा का सत्य वासना को ढूंढता है । वासना माटी है।

आत्मा कौन है ?

प्राणों में बुद्धि-वृत्तियों के भीतर रहने वाला विज्ञानमय, ज्योतिस्वरूप पुरुष ! चिन्तन, चेष्टा और स्वप्न उसका रूप है । लोक-परलोक उसके स्थान हैं और तीसरा है सन्ध्या स्थान ! वह वासनाओं का कर्ता है । वह अमृतधर्मा शरीर में भी रहता है, शरीर के बाहर भी । असंग भी तो वही है ।

टिट्ट्वी !

टिट्ट्वी !

कौन ? कौन बोल रहा है ?

पक्षी !

गार्गी ! इसके भीतर भी वही असंग पुरुष है।

क्यों नहीं ?

शूद्र में भी वही है, वत्स में भी, व्रात्य में भी, अनार्य में भी !

चारो ओर व्यापक दुःख है ! क्यों है यह वेदना ?

क्यों एक धनी है, एक दरिद्र है ? जब सबमें एक ही 'वह' है तो यह भेद क्या इसी पृथ्वी के नही हैं ? 'वह' तो सबसे परे है, अभिज्ञात। उसकी शक्ति इतनी है कि न इन्द्र एक तिनका हिला सकता है, न अग्नि उसे जला सकता है, न वायु उसे उड़ा सकता है। 'वह' समर्थ है। फिर भी इतना असाम्य, दारिद्र्य और रोग इस पृथ्वी पर क्यों हैं ?

कर्मफल !

पाप और पुण्य ! वही नियामक, वही नियन्ता।

टिट्ट्वी !

टिट्ट्वी !

अनाहत मधुरता का शाश्वत संगीत ! अप्रतिहत चेतना की अमृत-जीवी ! सन्ध्या में सूर्यास्त के उपरान्त पुरुष की पहिचान के प्रमाण। रुक जा, मुझे सोचने दे। श्वेतकेतु को अन्त में 'वह' मिला था। बीज में व्यापक सत्ता का नियमन पक्षी ! तू क्या अज्ञान के जाल में फंसा है जो यह सब नहीं सोचता ? मनुष्य का पूर्ण आनन्द तेरी मस्ती से भले ही गुरुतर प्रमाणित हो, किन्तु लोक की यह वेदना क्या सहज है ? तभी तो अश्वलजनक[1] सब राज्यभार को छोड़कर पथ पर झाड़ू लगाने आ गया था। सब कुछ त्याग कर ! क्यों ? उसने कहा था, 'मिथिला मेरी नहीं। मेरी आत्मा का किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं। मैं और तू क्षुद्रत्व के परिचय हैं, सीमाएं हैं। मिथिला जल जाए, वैभव चला जाए मेरा, किन्तु मेरा क्या जाएगा। वह सब जिसे मैं अपना कहता हूं, मेरा है कहां ?' विद्रोही ब्राह्मण ने जगाया राजा में यह भाव ! राजा ने कहा, 'मेरी राज्य की सीमा से निकल जाओ ब्राह्मण !' ब्राह्मण ने मुस्कराकर कहा, 'राजन् ! मुझे अपने राज्य की सीमा तो बता !' राजा चुप हो गया। प्रातःकाल वह पथ पर झाड़ू लगाता पाया गया किन्तु कैसी विवशता थी कि लोकधर्म के लिए रानी फिरउसे

१. महाभारत के आधार पर

प्रासाद में ले गई ! क्योंकि ! क्योंकि राज करना राजा का काम है। वह क्षत्रिय है, अतः क्रूर कर्म उसका धर्म है। इसी कर्म की जघन्यता को देखकर सम्राट युधिष्ठिर व्याकुल हो गए थे।

टिट्ट्वी !

टिट्ट्वी !

हां पक्षी ! मनुष्य बहुत विवश है। हम सुखी होना चाहते हैं; नहीं हो सकते। हम बन्दी हैं। हम आदि नहीं जानते, अन्त नहीं जानते।

हम कर्म-जाल के बन्दी हैं।

प्राचीन मनुष्यों का विश्वास जितना ही नये-नये युग में आकर विस्तृत हुआ है, जितनी ही व्यापक व्याख्या ने उसकी लघुता को हटाकर बड़ा किया है, उसकी सीमा छोटी होती गई है। जैसे-जैसे मनुष्य मेधादीप जलाता है और व्यापकतम अन्धकार को दूर करने के बड़े से बड़े प्रकाश को उजागर करने की चेष्टा करता है, उसके चारों ओर का अन्धकार भी उसके सीमित प्रकाश की परिधि के बाहर उतना ही निविड़ होता जा रहा है।

वयोवृद्ध मातामही मुझसे कहती थीं, 'गार्गी बेटी ! तेरी कल्याण-कामना करती हूं। पर अब जाने तुम क्या सब आत्मा की समानता की बातें करती हो। तुम कर्मानुसार ब्राह्मण-क्षत्रिय बताती हो, परन्तु मेरी दादी कहती थीं कि जन्मानुसार ही सब होता है।'

मैंने कहा था, 'हां मातामही ! जन्म ही पाप-पुण्य की अभिव्यक्ति है। परन्तु आत्मा तो सबमें एक है। वह कर्मानुसार कभी ब्राह्मण-देह ग्रहण करता है, कभी शूद्र-देह।'

मातामही ने कहा था, 'तुम्हीं लोगों ने तो दासों और शूद्रों को यह चपलता दे दी है। हर दास समझता है कि अगले जन्म में वह अवश्य ब्राह्मण बनेगा। गार्गी ! ब्राह्मण ही आदि वर्ण है। उसीमें शस्त्र ग्रहण करने के कारण कुछ क्षत्रिय बने थे। यह जो असुरों के वंशज यादव इस प्रजापति की भूमि पर श्वेतद्वीपी पाञ्चरात्र्योपासकों को ले आए हैं न, इन्होंने भक्ति के माध्यम से नया अनाचार फैलाना शुरू किया है।'

सुनता है पक्षी ! हम बन्दी हैं। हम ऊंच-नीच, धनी-दरिद्र, रोगी-निरोग, दासत्व और स्वामित्व, उच्च जाति-नीच जाति की दुरूह शृंखलाओं में बंधे

हुए व्यक्ति हैं। लोभ, वासना और माटी की इहलोक की स्पर्धा हमें बांधे हैं। जिस रूप में हम परलोक से आकर यहां विभिन्न संज्ञाओं की बाधाओं में कष्ट पाते हैं, क्या तू भी इसे जानता है ? क्या तुझे भी आसन्न मृत्यु का आतंक सोचने को विवश करता है ?

इससे छुटकारा कहां है ?

क्या वैराग्य मुक्ति है ?

वैराग्य में लोक का विनाश है, असंयम है, उच्छृङ्खलता है। अर्थात् अधर्म है।

तब हम धर्म के लौकिक रूप को जीवित बनाए रखने के लिए अपने ही कर्म-जाल के बन्दी हैं।

पक्षी ! छाया बड़ी सघन है। फलों की गन्ध आ रही है। चलूं, मुझे भूख लग रही है। आज प्रातःकाल ही ऋषि पन्था सौभर के स्वागत के लिए मैंने आज्ञा दी थी कि कोमल वत्स-मांस पकाया जाए ! वह तैयार हो गया होगा। फिर खा-पीकर यज्ञशाला में ब्रह्मचर्चा होगी।

पक्षी ! तू यहीं मगन रहकर गाया कर। परन्तु क्या तेरा यह अमृत शब्द भी सामगान नहीं, वही प्रणव नहीं है ?

टिट्ट्वी !

टिट्ट्वी !

३

दासी, तू मत सुना। चली जा।

रात की कैसी घोर निस्तब्धता छा रही है ! मृग सो रहे हैं। केवल तारे दिखाई दे रहे हैं। याज्ञवल्क्य परिव्राजक हो गया।

कात्यायनी—उसकी पत्नी पृथ्वी थी, वह अपनी ही वासना में लिप्त रह गई। चली गई साथ में अकेली ही उसकी दूसरी पत्नी मैत्रेयी ! वह ज्ञान की आराधना थी।

याज्ञवल्क्य ने कहा था, 'आ मैत्रेयी ! यह दास-दासी, धन-सुवर्ण, खेत, मैं इन सबको भोग चुका, पर यह मेरे नहीं हैं। मैं तेरा कात्यायनी से बट-वारा कर दूं मैत्रेयी ?'

मैत्रेयी ने पूछा था, 'भगवान ! यदि धन-धान्य से पूर्ण यह सारी पृथ्वी

मेरी हो जाए तो क्या मैं अमर हो सकती हूं ?'

'नहीं मैत्रेयी ! धन और भोग में अमृतत्व नहीं है।'

'तो फिर मैं इसका क्या करूंगी ?'

'हां मैत्रेयी ! पति, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, ब्राह्मण, क्षत्रिय, लोक, वेद, देव, भूत, सब केवल अपने लिए ही प्रिय होते हैं, अन्यथा नहीं। सब कुछ आत्मा है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, लोक, देव, वेद, भूत ये सब जो कुछ भी हैं केवल आत्मा हैं, और कुछ नहीं। गीले ईंधन से अग्नि से जो धुएं अलग होकर निकलते हैं, वैसे ही हे मैत्रेयी, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, इ (यज्ञ), हुत, आशित (खिलाया हुआ), पायित (पिलाया हुआ), लोक, परलोक, सम्पूर्ण भूत, इसीके निःश्वास हैं। यह आत्मा ही सम्पूर्ण प्रज्ञानघन है। यह इन भूतों के साथ उत्थित होकर इन्हीं के साथ नष्ट हो जाता है। यही आत्मा अविनाशी और अनुच्छेद रूप धर्म वाला है। अग्राह्य है यह आत्मा ! इसे ही नेति-नेति कहते हैं। न यह व्यथित होता है, न क्षीण ही। द्वैत ही भ्रम है। विज्ञाता को कौन जान सकता है ! जो स्वयं है, अनुभूति ही उसका विज्ञान है ? यही अमृतत्व है।'

याज्ञवल्क्य चला गया।

मैत्रेयी का जीवन सार्थक हो गया।

रात के अंधेरे ! किन्तु मैं किसे त्याग कर जाऊं ? पूछती हूं कि जब आत्मा के इतने रूपों को याज्ञवल्क्य जान गया था, वह भोग को छोड़कर क्यों गया ? क्या भोग ही द्वैत था ?

यदि यही द्वैत है तो आत्मा की अभिव्यक्ति कहां है ?

गार्गी न पूछ।

तेरा सिर कटकर गिर पड़ेगा।

किन्तु गार्गी पूछेगी।

गार्गी की प्यास नहीं बुझी। नारी हूं। मुझे ममता चाहिए। यह ममता क्या आत्मा का ही रूप नहीं है ? कात्यायनी दुःखी है या सुखी ! वह तृप्त है।

आत्मा पुरुष है। किन्तु जब वह नारी कलेवर में रहता है, तब पृथ्वी

उसे बन्धन में बांधती है। मिट्टी की सार्थकता उसके गन्धवती होने में है।

हम घूम रहे हैं। कर्म-जाल में बंधे। अव्यक्त के सिरजे हुए, अब बंध गए हैं। व्यक्ति का पाश टूटता है, जब पूर्ण में से पूर्ण घटकर भी पूर्ण ही बच रहता है।

बुड़िल अश्वतराश्विगायत्री की ही उपासना करता है, मैं क्या करूं?

यज्ञ के उठते हुए धूम! तुझे प्रणाम करती हूं।

सहज यही लगता है कि मनुष्य जो करता है वह उसकी अपनी सीमा में घिरा है। मुझे यही लगता है कि हम कहीं विशाल की ओर अग्रसर हो रहे हैं, किन्तु किधर? हमारा विकास हमारी लघुता का अनुभव है। तभी तो वर्बर शबर और पुलिंद हमारी भांति चिन्तन नहीं करता।

लोक का सत्य आनन्द है या दुःख?

दुःख उसका आभास है, आनन्द उसकी छद्मसत्ता है।

दासी! तू कब की चली गई। गार्गी! सोती क्यों नहीं?

नींद नहीं आ रही है।

क्यों?

धारा तो बहती चली जा रही है।

ठीक है, परन्तु मेरे तो कगारे टूट गए हैं।

हां, यह उपप्लावन भी अद्वैत है।

आयु, जाति, संस्कार, ये मनुष्य की मर्यादाएं हैं। और आत्मा! उसे अथाह दाह है, पिपासा है। तभी तो कहते हैं मरण के बाद, आ प्रेत मैं तुझे अन्न दूं, तुझे जल दूं, वस्त्र दूं। क्या आत्मा तब भी कुछ लेता है?

मैं क्या सोच रही हूं? क्या सत्य मिल गया है? नहीं, संवत्सरों में घूम कर भी 'वेद'[1] को कोई नहीं जान सका है। अभी कुछ और भी बाकी है, अभी कुछ और भी शेष है······

दूर अग्निहोत्र की लपट जल रही है। शूद्र वहां रखवाली करता द्वार पर सोता होगा। क्या है यह सब? हम देख रहे हैं कि सब कुछ बदलता रहा है······परन्तु परिवर्तन क्या है······मुझे नया विराट् पुरुष चाहिए···

जहां कुछ और नहीं देखता, कुछ और नहीं सुनता तथा कुछ और नहीं

१. वेद का शब्दार्थ है—ज्ञान; जानने योग्य

जानता, वह भूमा है। जो भूमा है, वही अमृत है······

जो अल्प है······वह मर्त्य है······

भूमा अपनी महिमा में ही प्रतिष्ठि है, मनुष्यों की महिमा में नहीं···

अहंकार से ही उसकी दिशाओं का निर्देश होता है, अन्यथा वही आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं सर्वत्र है······

भूमि ही आत्मा है······

वही स्वराट् है······

गार्गी ! तेरा जीवन व्यर्थ नहीं गया···उसने भी पथ पहचाना है··· वही···जिसके अतिरिक्त और पथ नहीं है···

नान्य पन्थाः············

९

मृग-तृष्णा

दीर्घ कथा

वाणी ! तुम्हारी जय ! मेरे युग का नमस्कार स्वीकार करो।

मानस का अन्धकार अब हटता जा रहा है।

राजहंस-सा निनाद करके कल्पना उड़ चली है और मेरे जीवन-सुख का तार-तार बज रहा है।

अपना स्वर्णिम आंचल फहराती, छायाओं से कल्लोल करती चंचला सन्ध्या आ गई है।

गन्धायमान समीर वृक्षों को सहलाता हुआ वन, उपवन, पथ, जीवन और मन में डोलने लगा है।

चंचल शिशुओं की भांति मनोहर कुसुम झोलियों से अपने हृदय की विथि खोलकर लुटाते हुए-से मकरन्द फेंक रहे हैं। बनप्रान्तर की धूमिलता में विहरण करती रजनी का नूपुर धीरे-धीरे बोल रहा है।

इन दो वेलाओं के संगम की मधुर कल्पना में रूप की आत्मा की संधियों को मिलाती हुई यह कौन खड़ी है ? यह देहली पर धरा दीपक है, या सन्ध्यातारा ? अरे नहीं ! यह तो मेरी चिन्मया ध्यानमौन अमर साधना है।

युग-युग तक अन्धकार में भटकते हुए नयनों को वह ज्योति-किरण-सी, प्राणों का मोचन-सी लगती है। वह तो शाश्वत इन्द्रजाल की मादकता है, ठीक ऐसी, जैसे निर्जन में वंशी-रव सम्मोहन की तरह छा जाता है। वह युगों के निर्माण की सुन्दर आत्मा, प्रलयों में निर्भीक प्राण ऐसे खड़ी है, जैसे इतिहास की भूमि में एक कल्पद्रुम उग आया हो जिसमें कोमल

छवियों के समस्त जीवन्त गान पत्ते-पत्ते की मर्मर बनकर समा गए हों !

आधारभूत चेतन की महिमा, उपत्यका की सरसी में खिले शतदल-सी होती है। वह दुलार की पुत्री है, यौवन का प्रेमोपहार वह तो धरती की लाडली है। ममता की सात्विकता उसे देखकर जाग्रत होती है, वह ही स्थिर मानस में विवेक बनकर दीपशिखा-सी प्रज्वलित हो उठती है। यह साधना एक कलिका-सी सुख-दुःख समान लेकर तोलती है। वह स्वयम् सुख-दुःख समान लेकर अपने में आत्मसात कर लेती है।

यह ही मेरे जीवन का समुल्लास है। यौवन जब सृजन करना चाहता है, तब इसीको मैं समुच्छ्वास के रूप में जलाकर उठते हुए देखता हूं। इसीकी प्रेरणा मुझसे पूछती है कि इस जगती के कार्यभार व्यापार कैसे चलते हैं, इनका पार कहां है ? है भी या नहीं ?

रंगीन चपल स्रोत कलकल-छलछल करके उमड़ता है। मोती की-सी तिरती बूंदें गिरती हैं। फेनिल स्वप्न जाग उठते हैं और तरल-सा विरल-विरल मोह फिर माटी पर भींगा-भींगा-सा उतर जाता है। अम्बर का प्रसार और धरती की व्यापकता निचोड़कर यह साधना ही मेरे मानस-क्षितिजों पर नये-नये मोड़ ला रही है। यही जीवन की शाश्वत और नवीनतम फलक है, वह शुद्ध आत्मा है। अमर है।

२

प्राण ! यह जो अक्षितिज-अवलान्त सुन्दर सघन वन है, यहां मोर की ग्रीवा की-सी चिलकती और श्यामला हरियालियां हैं। नीले आकाश की छाया में यह श्यामवन ऐसा लगता है, जैसे मां के पास बच्चा हो, शून्य का एक छौना-सा। दूर से देखने पर ऐसा लगता है जैसे ऊभ-चूभ होते अतलान्त समुद्र के हृदय से पीनतम होते हुए लरजते मेघ घने हो-होकर घुमड़-घुमड़-कर एकत्र हो रहे हों। जब पवन हिलता है तब भ्रम हो उठता है इन वृक्षों को देखकर कि कहीं सूण्डों को हिलाते हाथियों के झुण्ड चिंघाड़ तो नहीं रहे। मरकत-सी हरियाली के जगर-मगर वस्त्र पहने हुए पर्वत निरन्तर ऐसे उठते हुए-से लगते हैं, जैसे व्योम में उड़ जाने को आतुर हों। इस विपिन पर जब भोर में अकथनीय सुषमा फैलाकर सूर्य उगता है, तब क्षण भर ऐसा लगता है जैसे कोई विशाल सुनहला गरुड़ अपने क्षितिजरूपी अरुणिम

पंखों को हिलाता हुआ अपने इन्द्रनील मणियों के रंग के नीड़ में आ रहा हो। और संध्या-वेला में लगता है कि सूर्य एक गिद्ध था जो उड़ गया, आकाश-चुम्बी द्रुम दलों में अवरुद्ध-सा कहीं पत्तों की तहों के अन्धकार में विलीन हो गया। जब रजनी चन्द्रमा का स्वर्ण-कलश लेकर, छींटों में तारे उड़ाते, आती है तब वह सघन पत्तों पर दूधिया चांदनी ढालती है, और तारे विपिन की समस्त श्री मर्मर-सा करती, सकल शृंगार करके, वासना-चपल हाथों से तिमिर का काजल लगाकर भारी पलकों को आंजकर, उसकी ओर देखकर मुस्कराती है। उस समय कदम्ब वृक्षों के रोम-रोम को कंपित करती हुई वायु लताओं को गन्ध से रिझाकर अपनी रोम-विदीर्ण देह को उनके स्निग्ध स्पर्श से फिर उत्फुल्ल करती है।

वे पसरते बरगद ऐसे खड़े हैं, जैसे नील नभ को व्यजन कर रहे हैं। अपने सौ-सौ भुज धरती में गड़ाकर वे ऐसे अड़े हुए हैं, जैसे कृतवीर्य के अनेक पुत्र प्रलय पीकर निर्भीक-दृढ़तर होकर दर्प से हुंकारते खड़े हों।

और वे भीमाकार पीपल के पेड़। अजगरों के-से मोटे-लम्बे तने उन्होंने फैला दिए हैं, मानो व्योम में सरका दिए हों। उनकी सलोनी चिलकती कोंपलें जब थहरती हुई सरसराती हैं, तब प्रबालों और विद्रुमों की ढेरियों को भी हरा देती हैं।

जब भिनसार में भ्रमर जागते हैं, तब पक्षियों के झुंड कल-निनाद करते हैं। उस समय गन्ध से भरकर ब्रह्मचारी समीर नेम धारण से नदी में उतरकर स्नान करता है। कमलरूपी अंजलियां खोलकर वह उगते हुए त्रिविक्रम सूर्य को भक्ति से स्फीत-सा नतशीश होकर परागों का अर्घ्य देता है।

तब अपने मखमली पंख फरफराते हुए चपल तोते झुंड बांधकर कन्धे मिलाए ऐसे निकलते हैं जैसे वृक्षों की आत्माएं उड़ रही हों।

प्रतिध्वनित निनाद करता हुआ अहर्निश यहां यह भीम तुंग शुभ्र प्रपात गिरता है। यह दुर्वह है और इसका अनवरत निनाद चारों ओर व्याप्त है। ऊपर जलधारा रजत-सीपी-सी चमकती है, किन्तु नीचे स्फीत-सी फेनों से ढंकी हुई-सी धुएं-सी दिखाई देती है। वसुन्धरा से व्योम तक एक ही निर्घोष-सा उठता हुआ व्याप्त हुआ करता है, तब लगता है जैसे एकस्वरता ने ही

सकल के शून्य को भरकर बींध दिया हो।

जब कभी हिंस्र पशुओं के भयानक गर्जन गूंजते हैं तब मानो गुहाओं में घुसकर वे पर्वतों को पकड़कर झकझोरने लगते हैं और उनका विकराल अट्टहास सुरपुर के महाशून्य तक हुमकता रहता है।

गन्ध से भारिल हुई-सी स्निग्ध छाया दिन भर दीर्घाकार वृक्षों के चरण-तल पर लेटी हुई ऊंघती है, सलोने स्वप्नों की मर्मर-सी अनजान में ही बुनती हुई अन्तराल की निर्जन नीरवता में पूर्ण निस्तब्धता बनकर गूंजा करती है।

और कदली तरुओं के सुचिक्कण दीर्घ पातों की मनोहर छाया में झन्कार करते हुए हंस जब अति मुग्ध होकर मन को रिझाते हुए मीठा रव करते हैं, तब कोकिलों के कंठ में प्रतिस्पर्धा का उन्माद भर जाता है।

स्निग्ध मांसल-सी सुकोमल रूप की सतरंगिणी छाया जब गिरि पर मृदुल चंचल रेशमी वस्त्र-सी फिसलती है, तब यह सघन कान्तार उसकी शोभनीया मोहिनी सी किनारी-सा दीखता हुआ अपरिमित छवि से हौले-हौले हिल उठता है।

३

जहां कलकल नाद करती हुई नदी का प्यारा कूल सलज शाद्वल से ढंका है, और यूथिकाओं का सहारा बना हुआ है; जहां जामुन-कुंज के पार्श्व में वे सघन गूलर हैं, जिन पर बैठकर मोर अपने पंख ऊजर करते हैं; जहां पास में पुण्डरीकों से ढंका मनोहर शान्त सरोवर है; जहां से पश्चिम की तरफ तो केलों की भीड़ उगी है जो स्निग्ध पातों से अपनी मनोरम दीप्ति को आकाश तक पगाती है और प्राची की ओर तितलियों के प्राणों का स्वप्न, साकार मन गन्धवाह-फूला मधुर कदम्बवन है; जहां आंवले और इंगुदी के मनोहर वृक्ष खिरनियों को और भी सघन बना देते हैं और दीर्घ पत्तों का बहेड़ा महुआ के चल व्यजन से झूमकर फूलता-डहकता है; और अमल-तासों के मुस्कराते सुन्दर सलोने फूल हृदयहारी संजीवनी की भांति दीपों की जगमग-सी जगाते हैं; जहां इमली से कुछ दूर पर ही आम डहडहाते हैं और असंख्यों हरे-भरे वे वृक्ष बौर से लद-लदकर उस प्रिय वनभूमि का शृङ्गार करते हैं, वहीं जो तनिक ऊंची-सी सुन्दर भूमि है, उसे मौलसिरियों ने घेर रखा है, जिनके सतत झरते सुगन्धित फूल, उसकी शीतल स्वर्ण-सी

धूल को चन्दन बनकर ढंक लिया करते हैं।

उस स्वर्णधूलि पर एक सुन्दर मृग-मिथुन रहा करता था। उनका एक सलोना-सा चपल शावक था। पीछे की ओर अलौओं का नीला वन था जिससे गन्धित पुष्प निरन्तर टपका करते थे और वहां बैठकर जो मृगयूथ मस्ती से रोमन्थन करता था, यह जोड़ा उनकी सहायता से आश्वस्त होकर अपनी भीतियों को खो देता था।

सुकुमार हिरनी जब अपनी भारी पलकें खोलती थी तो हिरन अपलक रह जाता था। हिरनी तो स्वप्नों के अनेक इन्द्रधनुष झुलाती थी और हिरन की वासना का वेग उन्हें घेर लेता था। प्यार की जीवन्त छाया में उलझकर तृप्तियां अपनी ही सुलझन में मुखर हो उठती थीं। अपने छौने पर प्राण न्योछावर करते हुए दोनों वहां बातें करते घूमा करते थे।

जब कमलवन को प्यारा शब्द भरकर भ्रमर अपना संगीत छेड़कर गुंजित करते थे, और नीलकमलों का सलज पाण्डुर मकरन्द झरकर पुरइनों पर गिरी हीरकों-सी चमकती बूंदों को पुखराज-सा बना देता था और जब तरलमारा पारे-सी हिलती उन बूंदों को देखकर जल में खड़े नील मनाल सिहर उठते थे, तब वह मुग्ध दम्पति तितलियों के परों के हल्के स्पन्दन-शब्द में सृष्टि के आदिम स्वरों को सुना करता था, और कुसुम-अवदात के झीने स्तरों में जागरण के मनोज्ञ छन्दों का निर्माण करने की इच्छा से कल-कण्ठ विहगों को मैत्री भाव से देखता था।

जब भूख लगती तब खाते थे, परन्तु प्यार से मिल-बांटकर ही। कभी सारे यूथ के साथ वे चौकड़ी भरते हुए सुदूर तक की हरियालियों को लांघते थे। इस तरह भोर हो या सांझ, दिन या रात, चांदनी या धूप, उन्होंने मानो सकल वेला में हर्ष को बांध लिया था। जीवन हंसता था, सृष्टि का वरदान उसी ठौर पर पलता था। वे नहीं जानते थे कि दुःख क्या था।

४

सघन मेघों के बीच निर्घोष, विद्युज्जिह्वा की सर्पिणी-सी ललकती कौंध, भीषण कड़क, प्रखर वर्षा की धारा, उच्छ्वसित प्रचण्ड तूफान, धूमिल निबिड़ता और झकझोरते गर्जन से जब व्योम मुक्त हो गया, मानो किसी कारण से बन्दी छूट आया हो, तब शरद् का उजियाला शशि जगमगाने लगा।

उखड़ते वृक्षों के नाद, टूटते कगारों के चीत्कार, प्रवाह से मदमत्त जल के अट्टहास से भारिल प्रतिध्वनि, गहरी पंक के फूत्कार और भींगी विजनता से जब भूमि, तम के वेग को हराकर निर्मल हुई, तब स्निग्ध पवन के स्पर्श से रोमांचित शतदल पुलकित होकर मुस्कराने लगा।

दूर तक कांतार में तृण-तृण पुलकते मुस्कराए और नीले पर्वत शुभ्र नभ की छांह में कुलबुला उठे। धीरनिनाद प्रतिध्वनित करता जल-प्रपात गंभीर और सुन्दरतर हो गया। आकाश तक उसने अपना रोर भर दिया।

जब जल पीकर हिरनी ने ऊपर निहारा तो वह क्लांत-सी देखती की देखती रह गई।

वह सघन निर्घोष उसके प्राणों में भरकर घुमड़ता हुआ उसके अहम् की अग्नि को दीप्त करने लगा। दीन मृगी ने उस विराट महान छवि को देखकर अपने मन में अपनी लघुता को अनुभव किया और समता की तृष्णा ने वेग से उसे घुलककर ऐसा व्याकुल कर दिया कि उसकी क्षुद्रता की बुद्धि अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उठकर पुकार उठी।

उसने आकाश की ओर देखा, जहां चपल गृध्र उड़ रहे थे। उनके दीर्घ पंखों का प्रसार जब हिलता था तब वायु विक्षुब्ध हो उठती थी। कहीं सिंह की भीम-गर्जना पर्वत-कान्तार को हिलाती शशक को दूब के भीतर भगाती थी। हिरनी का हृदय विक्षुब्ध-सा डूब चला।

उसने नीचे देखा।

घास की पत्ती उसे देख हंसने लगी।

फिर मनमौज से गाने लगी : 'हिरनी, मत इधर आ। मैं नवेली, मेरा मीत तो आकाश का मेघ है। कब से उसकी राह देखती मैं भूमि में दबी थी। मृत्तिका के स्तरों में बन्दिनी थी। पर उसकी पगचाप सुनकर मैं झूमकर ऊपर आ गई।

'मुझे सब रौंदते थे, मेरी सत्ता से मानो अनजान, जैसे मैं इतनी नगण्य थी, किन्तु हिरनी! मैं अन्धकार में जड़ी हुई प्राणचेतना ही थी। मुझे मेरे मीत के स्पर्श ने चेतन कर दिया क्योंकि वह रस है। उसने मेरी लालसा को जगा दिया। तब मैं विराट व्योम की छाया में एक बार सिहर उठने को आतुर हो उठी।

'मैंने मेघ से कहा—प्रियतम ! तू रस ढाल, मैं पीऊं, पांवों तक रससिक्त हो जाऊं और फिर मरकत बरनी होकर सिंगार कर लूं। मैं जानती हूं कि जब तू चला जाएगा तब फिर मुझपर घनी धूल जम जाएगी। किन्तु मेरे मीत ! जब कभी तू यदि फिर इसी पन्थ पर लौटकर आएगा तब फिर मैं सिर हिलाकर तेरे गौरव की वन्दना करने को यहीं मिलूंगी। ओ पान्थ ! सिन्धु में तपकर, व्योम में प्यार से चलकर, तू बहुत दूर से यहां आता है, इसलिए मैं तेरे चरण चूमती हूं, और मेरे प्राण तेरे पुण्य को पीकर ऐसे अमर हो जाते हैं कि मुझे नष्ट करनेवाले कभी भी नष्ट नहीं कर पाते।

'ओ हिरनी मत इधर आ ! तू जल रही है अभागिन ! जा चली जा।'

हिरनी ने क्रोध से उसे चबा डाला, रौंद डाला और प्रपात की धीर अजस्र ध्वनि में वह फिर सब भूल-सी गई। गति ! महागति ! ! और व्यापक दीर्घ हुंकार ! ! ! यह सब कुछ देखकर मन संकुचित होता चला गया और अति रुष्ट-सा वह क्षुब्ध होकर छटपटा उठा। तब हृदय में एक निर्धूम ज्वाला-सी जल उठी। एक-एक पल भारी-भारी लोहे-सा बन गया। उसे लगा, मानो शरद के मेघ रूपी हाथ हिलाकर आकाश और अवनी उसे बुला रहे थे।

हिरनी उद्भ्रान्ता-सी भाग चली।

आतुर हृदय हिरनी जब घर पहुंची और उसने चाहा कि अपनी स्फूर्ति उसे तुरन्त सुना दे, धमनियों में बहती हुई अग्नि को उगले महत् के आह्वान का आभास उसे दिखा दे, उसने देखा, हिरन श्रांत लेटा था, भारी थे पलक, श्वास कुछ गहरे, अभी व्याघ्र के अवरोध से भागकर आया था। अभी भी नयनों में उसके भय था, शंका मानो पास ही घूम रही थी, आज उसे भाग्य ने ही बचाया था।—

उसे देखकर हिरनी को लगा वह एक बन्दिनी थी। सृजन की छलना मात्र, क्या वह सचमुच उसकी संगिनी थी ! उसमें वह जीवन का धधकता नया उन्माद कहां था, जो प्रलय के विनाश में भी सिर उठाकर गरज सकता ? क्या वह इसके साथ ही रहकर सारा जीवन धूलि में मिला देगी ? यह तो केवल सींग दिखाता है। दाह से तो इसकी छाती कभी नहीं भरती ?

और हिरन आंखों में उमड़ती दीनता-सी गेह की ममता लिए, मृत्यु के मुख से बचा बैठा था। और हिरनी सोचती थी कि क्या यही है सत्ता एक

निर्बल और पराजित हृदय की ?

इसमें निर्बाध गति की प्यास कहां है ?

हम इसी वन में सिंह के दास बनकर क्यों रहें ?

क्या हमारे श्वास भी कभी तूफान बनकर हंसेंगे ?

और नयनों में आशा भरकर वह गर्व से बोली, 'तुम्हारे नयनों में पर्वतों को रौंदने की चाहना क्यों नहीं है ? प्रपात का दीर्घ घोष निमंत्रण दे रहा है, वह तुममें हौंकने की साध क्यों नहीं भरता ? क्या तुम्हारे मन में नहीं आता कि हम भूमि के अनजान पन्थों को उलांघें ? और अपने चरण में गतिमयता लेकर भी बन्धनों को आप ही बांध डालें ?'

वह आवेश देखकर मृग मुस्करा दिया और उसने कहा, 'प्रिय ! मैं बहुत अनुभव कर चुका हूं, अहम् के सारे खेल मैं देख चुका हूं। सभी की सीमा बंधी हुई है और कर्म उसमें अपना जाला बुन रहा है। क्रान्ति का विद्रोह कुछ और है, किन्तु आकांक्षा एक अन्य ही वस्तु है ! देख ! यह अवकाश, यह सारा विस्तार किनारा ढूंढ़ता फिर रहा है, इसीलिए सृष्टि की आदिम तृष्णाएं केवल स्नेह का सहारा मांगती घूम रही हैं। आ, इधर बैठ। देख, मौलसिरियां झर चुकी हैं। अब तो धूप का भी रंग पके धानों का-सा सुनहला हो चला है। अभी कुछ ही देर में संध्या यहां व्योम में आएगी और अपना मूंगिया आंचल हिलाकर दीप जलाएगी।'

परन्तु मृगी के लोचनों की चाहना उत्तप्त सूनी आह बन गई। उसने ऊपर निहारा और तब पृथ्वी पर बैठकर बोली, 'इस मेदिनी पर जिसने जन्म लिया है वह ऐसे रहे ही क्यों कि उसे चारों ओर बाधा घेरे रहे ? उसे विवशता अवरुद्ध करती हुई क्यों कसती रहे ? विधाता उसे दास बनाकर क्यों रखे ? अरे, भला वह जीवन भी किस काम का जो कि दुर्वहमुक्त से स्पर्धा न करता हो ! बताओ कि मैं अनसुना बनाकर महागति का यह निमन्त्रण नहीं सुनूं ? बधिरता छोड़ो और जागो ! सोई आकांक्षा को जागृत करो। क्या जीवन थका हुआ-सा डगमगाता रहे ? तप्त आहों से अपना हृदय जलाता रहे ?

'यह सारी भूमा अति विस्तृता पड़ी है, इसपर हम कहीं भी विचरण क्यों नहीं करें ?'

'अपनी नींद क्यों न सोएं-जागें ? क्षुद्र बन्धनों को क्यों न लांघ जाएं ?

'जब सबों के साथ दीन बनकर हम यूथ में रहते हैं तब स्वातन्त्र्य कहां हैं, मुझे बताओ !

'क्या हमने देह का ही जन्म लिया है ? और हम क्षीण बनकर इसका दंड ही भरते रहेंगे ?

'क्या हम भाग्य के नखदन्तों के आमिष भोजन मात्र हैं ?

'मैं चाहती हूं मुक्ति का स्पन्दन कि सब अपना दीखने लगे, ऐसी शक्ति का गौरव कि सबके सिर झुक जाएं ।

'चाहना तो यह है कि अपना शीश व्योम तक निर्भय होकर उठा दूं ! तृप्ति की इस प्राप्ति के लिए मैं अपना सब कुछ लुटाने को तैयार हूं ।

'दाह-सा जलता हुआ, हृदय में पलता, एक अनजान अरमान धधक रहा है ।

'तुम स्वामी बनो ! मैं स्वामिनी बनूंगी ।

'यदि तुम्हारे पास शक्ति है, तो ही मैं अनुगामिनी बनूंगी ।

'हम दीन और विपन्न बनकर क्यों रहें ?

'स्नेह की छलना में, जैसे सब हैं, हम वैसे ही क्यों बने रहें ? यह जीवन क्लीवता बनकर नहीं रहा । विवशता के समस्त बन्धन खंड-खंड हो जाएं ।

'अरे मैं हूं तभी यह सारी सृष्टि है—बस यही स्वर अडिग मन से आकाश तक फैलता चला जाए ।

'जीवन निरन्तर वेग भरता हुआ ललकारता है कि मैं वृक्षों की-सी सत्ता नहीं चाहता, मैं नहीं जानता, मैं क्या चाहता हूं, परन्तु बाण-सा निरन्तर उड़ना अवश्य चाहता हूं । व्योम में प्रतिध्वनि बनकर मैं पर्वतों पर गूंजकर बजना चाहता हूं । मैं चाहता हूं कि धूलि के प्रत्येक कण में अपनी ही वीर पगध्वनि का ठुमकन सुनूं ।'

मृग ने सुना और चिन्ता ने उसे घेर लिया ।

५

मृगी सोचने लगी ।

चांदी की रस्सियां बांधकर मेघों की डाल पर पावस की ज्योत्स्ना पुरवैया की तालों पर झूलकर चली गई । सावन की जीतों की हरियाली

के बैठने पर ताल-तलैयों में सवनों की पुलकित टोलियां कूकने लगीं। तब चन्दा टिकुला बना रात के भाल पर चमकता था, और फिर चपल कटाक्ष करके मेघों के घूंघट में छिप जाता था। बिजली तलवारों-सी घनी मरोर पर नर्तन करती थी और घनाडम्बर तुमुल रोर करके गर्जन भरता था। अब क्या वह उन्मत्त वासना प्रकृति से चली गई ?

और मृग सोच रहा था।

रात यों ही अंगड़ाइयां लेती रहेगी। धौस की चादर फिर अपनी सुकुमारता दिखाएगी। कल्पनाएं कभी काम न आएंगी, न प्राणों को सुख देंगी। अन्तराल की विवशता भी भूत पदार्थ के कारागृह में बद्ध है और यह सारा प्रसार अब तक अपनी सारता मुखर होकर नहीं समझा सका है। क्या रूप भी आत्मचेतन यातना है ? कितना सौन्दर्य है किन्तु इसका अर्थ क्या है ? सुघर जीवन की विभोरता क्या केवल उसकी वासना है ?

उनींदे नेत्रों से मृग ने शावक को सोते देखा, मानो अपने से पहले और बाद की सृष्टि को जागृत देखा। वह सो गया। किन्तु मृगी नहीं सो सकी।

वह सोचती रही। उसने स्वप्न देखा :

महागिरियों के निर्भर झरने लगे, धरती के सोते फूट निकले। क्योंकि उसका स्वर उठने लगा था। वह पुकार रही थी। तब कोकिल बोलने लगे और उनकी लोरों से चिनगारियां निकलने लगीं। तब जीवित श्रम के स्वेद-बिन्दु गिरने लगे और···

मृगी जाग गई।

प्रभात हो गया था।

मृगी ने कहा :

'रात बीत गई। जो नींद में खोए हैं, वे इस सुहावनी वेला का आनन्द क्या जानें ? वे कभी भी अन्धकार को भागते हुए नहीं देख सकते। वे कभी नहीं देख सकते कि ज्योति के असंख्य बाण किस प्रकार महान अन्धकार के दुर्ग को विदीर्ण करके ढहाते हैं। असत्य की काल-कोठरी से मुक्त होता हुआ सत्य वे क्या देखेंगे ? रूप की अयालों को फरफराते प्रकाश के तुरंग किस प्रकार पथ की बाधाओं को लांघते चले जाते हैं, उनको यह कभी भी ज्ञात नहीं होगा। उमंग से दुरन्त हो प्रचण्ड

जब लिए हुए बढ़ने का यही समय है। यही समय है जब उषा-स्तवन में आदिकाव्य मुखरित होता है। शताब्दियों के रन्ध्रों में काल-वंशी में अमर्त्य स्वर फूंककर अनन्त रागिणी गुंजाने का यही समय है।

'प्रकाश के मार्ग पर चलो। कभी मृत्यु भी न झुका सकेगी।' यही तो वायु भी विभोर होकर पुकार रही है। विराट रव से दिगंतों को भरकर प्रचण्ड पराक्रमी विष्णु ने इसी समय समुद्र भेदकर इस पृथ्वी का उद्धार किया था। सदेह स्वर्ग जाने वाले साहसी को ही विजय के घंटे बजते हुए सुनाई देते हैं। अन्यथा सब कुछ हिमगलित-सा लगता है। जागरण के लिए यही बोधिसत्व वेला है और मुक्ति का सन्देश कहता है कि निर्बलता के शीश इसी समय धूलि में गिरता है।

हे सूर्य! तुझे नमस्कार। तेरी किरणों से भय भागता है। जब तेरे सहस्र अश्व दौड़ते हैं तब अन्धकार खण्ड-खण्ड होकर भागने लगता है। यही समय है जब तू प्रेरणा देता है और तेरा भाल वैसा ही शोभित लगता है जैसे शहीद फूल बनकर धूल में खिल उठता है। तपस्विनी वेदना इसी वेला दीपशिखा-सी अनन्त आलोक में लीन होकर जीवन का सम्बल बन जाती है।

उठो! उठो! नवीन तीर दिखाई दे रहे हैं। प्रवीर जय-निनाद से नौकाएं मचल रही हैं। उठो कि वृक्ष फूलों की ढेरियां चढ़ा रहे हैं। सवंदना विहंगम अब प्रभातफेरी लगा रहे हैं।

सुवर्ण नभ है या कोई उज्ज्वल भविष्य का प्रचण्ड देवता जो अतीत के गुहान्धकार से निकल ज्योति की भुजाएं उठाकर काल को ललकार रहा है, ऐसी कठोर है उसकी ध्वनि कि पर्वत विक्षुब्ध हो गए हैं और समुद्र महानाग की भांति सहस्र फणों को बालू में पटककर फेन उगलता लपेटे खाकर छोटा हुआ जा रहा है।

ज्ञान के बन्धन खुल गए हैं, मन की धीरता जाग रही है। दुःख के निकष के वक्ष पर सुवर्ण रेखा की भांति जगमगाने के लिए उद्यत हो जाओ। दरिद्र दीनता कभी न घेर सके। वायु भेद कर अमोघ श्वास खींचो। दुःख-तिमिर का पठार तोड़कर आलोक का पौधा हिल रहा है।

विराट काल-तूर्य्य में प्रचण्ड श्वास भर दो और प्रकाश का सतत

उत्तराधिकार प्राप्त करो। दीप्तभाल, अतन्द्र गान की तरह मुक्त होकर अजेय चेतन विराट होकर जाग उठने का यही समय है !

तभी शावक जाग उठा और उसने पुकारा, 'मां ! '

तब मृगी ने कहा, 'पुत्र ! उठ और देख यह प्रभात कह रहा है कि तू अपना विकास कर।'

हिरन ने सुना तो कहा, 'सबका विकास कर।'

हिरनी ने कहा, 'झूठ मत सिखाओ मेरे बालक को। विकास व्यक्ति की साधना है।

हिरन ने कहा, 'वह समूह में से जन्म लेती है। जो औरों के काम नहीं आता, वह अपने लिए व्यर्थ ही जीवित रहता है। चक्र में लगे अरों की सार्थकता उसकी धूरी के घूमने में होती है प्रिये।'

हिरनी ने चिढ़कर कहा, 'वृक्ष भी धूप और हवा लेने को अपना शीश अधिक से अधिक उठाने की चेष्टा करते हैं।'

हिरन ने कहा, 'जो ऐसे होते हैं उन्हें आंधी का निरन्तर भय रहता है, वे किसीको छाया नहीं देते, न उनके फल ही किसीके काम आते हैं। काल जब उन्हें मिटाता है तब उनके बीज भी अनजान भूमियों पर गिरकर नष्ट हो जाते हैं और उनका अहंकार किसी काम नहीं आता।'

हिरनी ने कहा, 'मत कहो ऐसा कि सिर झुकाना ही गरिमा की चरम सीमा है। जो सिर उठाना नहीं जानते, वे कभी अपने चारों ओर की परिधि के बाहर नहीं निकल पाते। वे जहां जन्म लेते हैं, वहीं मर जाते हैं और उनके शव में से ही उनके बच्चे पैदा होते हैं, जो उन्हींकी भांति निर्वीर्य होते हैं। जिन्हें राज्य और भूमि की प्यास नहीं, उनके लिए वह भूमि भी व्यर्थ है जिसपर उन्हें अन्त में सदा के लिए सो जाना है। पुत्र ! उठ और विजयी बन ! '

हिरन ने कहा, 'पुत्र ! विजय है अपनी सुन्दरता में, दूसरों का दमन करने में नहीं। शक्ति का तो अन्त ही नहीं है और यदि स्पर्धा ही संस्कृति है तो तृष्णा के हाहाकार का भी कोई अन्त नहीं। समानता में द्वेष का बीज कभी मत बोना और कभी यह दम्भ मत करना कि सृष्टि का केन्द्र तुम्हारे गौरव में निहित है। हमारी सारी प्राप्तियां महत के कार्यव्यापार की तुलना

में बहुत छोटी है। अतः गौरव हमारी आत्मछलना की तुष्टि मात्र है, और कुछ नहीं। हमारा वास्तविक गौरव हमारा वह स्नेह है जिससे जीवन में आनन्द उत्पन्न होता है और हमारे स्वरों में मिठास आती है। आदि और अन्त अज्ञात है पुत्र! हमारा सत्य इतना सीमित है कि हम बहुत थोड़ा जानते हैं। जानना ही जीवन का सत्य नहीं, सत्य है रहना। जानना यदि रहने को सुघर बनाने का साधन है, तभी वह ग्राह्य है। अतः मेरे पुत्र! जीवन को समझने के लिए इतने आतुर मत बनो, जितना उसे सुन्दर बनाने के लिए।'

हिरनी ने सुना तो मन ही मन अवरुद्ध हो गई। उसे लगा वह एक निरीह मृग के सामने थी।

उसने कहा, 'पत्थर को हिम जैसा स्निग्ध समझकर यह कभी विश्वास मत करो कि वह पिघलना भी जान सकता है।'

हिरन ने कहा, 'ऐसा मत कहो प्रिये। बहुत यात्रा करके घिस चुकनेवाला पत्थर ही स्निग्ध बनता है। उसे पिघलाने के लिए पृथ्वी के गर्भ की अग्नि चाहिए। वह जब पिघलता है तब पानी की तरह कलकल करके वह नहीं जाता, अपने चारों ओर विध्वंस और भयानक उत्ताप फैलाता हुआ शोषण करके धरती को व्याकुल कर देता है।'

६

शावक यूथ के साथ चला गया।

मां का मन उमंगा और फिर ठहर गया। पिता ने कहा, 'प्रिये! आज कैसी उदासी तेरे मन को खाए जा रही है। लौट-लौटकर गूंजनेवाली टेक की तरह मेरा मन मनुहार करता है कि आ मुझसे बोल। तेरी उदासी मुझसे देखी नहीं जाती।'

रूठी हिरनी पारिजात की छाया में जा बैठी तो हिरन ने कहा, 'प्रिये! सप्तपर्णी की सुषमा फिर अठखेलियां कर रही है। देख! तेरे नयनों से खंजन फिर फरफराकर उड़ने लगे हैं। तेरे नयनों के कोए जैसे श्वेत हंस-से मस्त होकर घूम रहे हैं। गन्धित पवन को सूंघकर मुझे विगत की स्मृति आ रही है।

'प्रिये! यही वह वनभूमि है जहां हमने जन्म लिया है। इसके कण-कण

को प्रणाम ! यह हमारे सुख-दुःख की गाथा को छिपाए कैसी पुस्तक-सी खुली पड़ी है।'

हिरनी ने हंसकर कहा, 'प्राण ! इसे वीर रौंदते हैं, यह न किसीकी है, न किसीकी होकर रहेगी। हमारे पूर्वज सदा से तो यहां नहीं रहे।'

हिरन ने कहा, 'अरी बावली ! हमारे श्रम और प्यार ने इसकी बालू को सुनहला बना दिया है। कहते हैं, पहले यहां दलदल थी। हमारे पूर्वजों के श्रम ने ही इसे सुन्दर बनाया है। यह नदी, यह वन, यह पर्वत, यह वृक्ष, यह सब अपने हैं।'

हिरनी ने उत्तर दिया, 'प्राण ! जीवित का अर्थ खड़ा रहना नहीं, चलते रहना है। जो जंगम है उसे स्थावर से कैसी प्रीति ! जो है नहीं, उसे है क्यों कहा जाए ?'

ये बातें सुनकर एक तोता वृक्ष की डाल से उड़कर आ गया और एक शिला पर बैठकर बोला, 'अरी पगली ! अपना घर अपना ही घर है। तू नहीं जानती कि अपने की याद कैसे रुलाती है। सोते में, निन्दिया में सपनों से छलकर, तो जागे पर आंसू से हिला-हिला देती है।'

हिरनी ने कहा, 'ओ रक्तचञ्चु कीर ! घर स्त्री की स्वतन्त्रता और पुरुष के पराक्रम का अन्त है। अस्तित्व मात्र के लिए अनथक परिश्रम में खटना और महत्वाकांक्षा का पददलित हो जाना ही घर है। सारी पृथ्वी हमारी है। ओ बंकिम दृष्टि से निहारकर बोलनेवाले ! तू तो पंखवाला है, आकाश को नाप सकता है, फिर भी कैसे इस बूढ़े बरगद के कोटर में तूने अपने को बन्दी बना लिया है। आज तू उड़ा भी नहीं ?'

तोते ने हंसकर कहा, 'ओ अनबूझ ! जिसके पंख नहीं हैं, उसे ही पंखों को देखकर ईर्ष्या होती है। पंखों की मजबूरी पंखवाला ही जानता है, दीर्घ-लोचनी ! शून्य की उड़ान में पास भी दूर है, और दूर का तो कोई अन्त ही नहीं। ऊपर-ऊपर से देखने से धरती की गन्ध भी तो नहीं मिलती । जहां अपने नहीं; वहां धरती भी स्वर्ग नहीं। देखने के चमत्कार से बढ़कर, मन से मन का मिलकर तृप्त होना है। आज मैं घायल हूं तभी नहीं गया। आज मेरे बन्धु मुझे भोजन देंगे। तू नहीं जानती, आज इस वृक्ष की छाया में मुझे मेरा सारा बचपन याद आ गया है। यहीं मेरे दुलार ने सपनों के धागों में

स्मृतियों के मोती पिरोए थे।'

तोते की बात सुनकर बरगद झूम उठा और मैना गाने लगी।

आई थी जब हेमन्त ऋतु सलोनी, तब हीरी-सी बयार ने फूलों के गालों को मसलकर कहा था, 'शीघ्र सो जाओ, फिर मैं चली जाऊंगी। बिदा में रोते-रोते प्रभात के तुहिनकण तुमने मेरे लिए सजा तो दिए, पर कोई सदा तो नहीं रहता।' तब बरगद ने कहा था, 'मेरे निवासी मेरे आंचल में रहें। मैं इनके कलरव से रसभीना हूं।' तब धरती ने कहा था, 'मैं भी गन्धभीनी हूं।'

ऐ हो ! शिशिर आई। धौत हिमवसन छा गया। मृगयूथ भी छिप चले। सुनहली धूल में धूप घुलकर ठण्डी हो गई जैसे पूनम के चन्दा की उजियाली हो। तब बरगद ने कहा, 'मेरे पत्तों में आ छिपो।' और तब धरती ने भी कहा, 'मेरी माटी में दीपों के विसर्जन का ताप है, बलिदानियों के गौरव का सत्य है, वह तुम्हें मरने नहीं देगा।'

शिशिर गई। वृक्षों ने कोपल अपनी झोलियों से निकालकर बाहर बसन्त के आगमन के स्वागत में हिलाए और पुंस्कोकिल ने रागभरी तान सुनाई। सारा वन झूमने लगा। स्नेह में ज्वार, गेह में प्यार उषा भर लाई। बोल सखी, बोल सखी ! अरी क्या बात हो गई ? कोयलिया बन-वन डोलती बोलने लगी। कुहुक-कुहुक कर क्यों रस घोल रही है ? नवेली भी लाजो बनी। हाय मधुऋतु आ गई। चांदी का चन्दा पत्तों को पलट-पलट देखने लगा। मलय शिशिर से मुक्त होकर चल पड़ा और मकरन्दों ने रोली मल दी। मधुरिमा की लक्ष्मी नूपुर बजाने लगी। अलिकुल गुंजारने लगा। पीली-पीली सरसों तक झंकार गूंजती रही और पलासों में रक्त का संचार होने लगा। कनेरों में दीप जलाकर, बौरों में स्नेह के प्रतीक शोभित करके वसन्त ने शिरा-शिरा को यौवन से स्फीत कर दिया। कमल-दलों को चपल हंस अपने मुख में लेकर खेलने लगे। शुभ्र ज्योति की झरन लग गई। सुहागिनी विहगियां मंगल-गीत गाने लगीं। घर-घर सुख-समृद्धि छा गई और जीवन की जीत अवनि की ललक में व्योम तक गमकने लगी। तब बरगद ने कहा, 'आओ ! एक स्वर से नाचो-गाओ।' धरती ने कहा, 'बलिहारी। सिरजन के आनन्द की अनुभूति मुझे मेरी रचना ने ही दी।'

हाय-हाय ! ग्रीष्म ऋतु आ गई। वृक्षों की छाया में हांफते बैठे पक्षी

पेट से धरती की ठण्डक को खींचने लगे। सूर्य की किरणें अगन-बान क्या, बल्कि नागिनें बनकर उड़ने लगीं। जिस पौधे को डसा वह मुरझा गया। यह देखकर संध्या ने कहा, 'हाय पवन ! तुझे क्या हो गया जो ऐसा हर-हराता-धधकता डोलता है ?' वह बोला, 'दे ले ! तू भी दोष दे ले मुझे। सारी रात नदी की कछार पर डोला कि थोड़ा पानी पी आऊं, मगर बूंद न पाई और मेरा अन्तर्दाह मुझे लपेटा दे-देकर मारे डालता है। मैं करूं तो क्या ?' तब मेरे बरगद ने कहा, 'मेरी छाया में बैठकर दु:ख झेलो। तुमने ऊपर का जल पिया, मैंने जड़ें फैलाकर भीतर का। तुम जल्दी सूख गए, मैं देर में सूखूंगा। जबतक मैं हूं तबतक मेरे जीवन को सफल करो। देनेवाले ने मुझे मीठे फल नहीं दिए, नहीं तो मैं तुम्हें माटी की मिठास भी देता।' तब धरती ने कहा, 'दाह मेरी सत्ता का ही प्रतिरूप है। इसे मैं भी तो झेलती हूं। सबकुछ लौट आएगा। घबराओ नहीं।'

तब एक दिन मोर पुकारा। धरती के अन्धेरे से निकलकर दादुर बोला। छोटे में भी बड़ा स्वर व्याप गया। ओ हो ! वर्षा ऋतु आ गई। बादल झकझोरे लेने लगे। राग की मनुहार लेकर फिर सजीले घन आ गए। धमनियां गमकने लगीं, निश्वास फिर जग उठे। स्मृतियों के सघन अम्बार ललकारकर ही प्यास को जगाने लगे। बिजलियों ने विरहियों के गीले नयन सुखा दिए। विवशताओं को प्यास ने पसर दिया। आशा के हरीले पलक झपककर फिर खुल गए। वेदना की दूरियों ने सपने नहीं तपाए; लघु तरी ने तट देखा, मंझधार को नहीं झेला। ढीठ समीरण फिर रस भर लाया। कुररी के पांख फिर खुल गए। अपने ही विरह के बोल कोयलें सृष्टि में झनझनाने लगीं। गीतों ने पत्थर भी पनीले कर दिए। मेघ ने फटी धरती को कन-कन सींचकर मिला दिया। तब मेरे बरगद ने मेघों के नीचे सिर झुकाकर कहा, 'जीवनदाता ! आ मेरे रोम-रोम में बिंध जा कि मैं अगली ग्रीष्मऋतु तक इसलिए खड़ा रह सकूं कि यह मेरे पांखी मेरे अंक में कल्लोल कर सकें।' तब धरती ने कहा, 'पुत्र ! मैं तेरी मां हूं। मैंने तेरे लिए इतना रस भीन लिया है कि तू जहां चाहे जड़ से अमृत पी ले।'

यह आ गई अब शरद् ऋतु ! इसकी महिमा सरोवर में उतरकर आकाश देखता है। ओ सजनी ! ओ सजनी ! अब आंखें खोल दे। व्योम

में मोर की बांसुरी बज रही है। यामिनी भर दूध-सी चांदनी झरती रही, वही क्षितिज पर जमजमकर स्निग्ध चन्दन जैसी हो गई। पवन मन्द सांस लेकर उसे पी रहा है। ओ सजनी! अब आंखें खोल दे! नींद और जागरण रूप की साधना हैं। चिरन्तन और सजग वासना तो यह रूप ही है, जैसे बन्धन की सतत कामना ही वास्तविक मुक्ति है। देख! अब कली पांखुरी खोलकर फूल बन गई है। ओ सजनी! अब आंखें खोल दे।' तब बरगद ने कहा, 'प्राण का सम्वेग मेरे हर क्षितिज तक समर्पित है। मैं तुम्हारा हूं' मुझे स्वीकार करो। तब धरती ने कहा, 'ओ बरगद के देवता! तू ही मेरा भी मूल है। मुझे देख। मैं भी समर्पित हूं।'

मैना गा चुकी तो तोता हर्ष से रोने लगा। मृग धरती पर लोटने लगा और कहने लगा, 'मेरी मातृभूमि! तुझे मेरे जीवन की मनुहार! मैं तेरा हूं।'

पता नहीं, तब सारा सघन वन ही दुहरा उठा—मैं तेरा हूं!

तोता कहने लगा, 'कौन किसका है?'

तब हिरनी ने हंसकर कहा, 'समर्पण रहस्य के सामने प्रदर्शित एक भय मात्र है। यह सब कुछ हमारे लिए है। कोमल दूर्वा पर बैठकर छायाओं में अधमुंदे नयनों से देखते हुए धीरे-धीरे रोमन्थन करने वालो, यह न भूलो कि तुम्हारे पूर्वजों ने सींगों का भी प्रयोग किया था। यदि वे व्यर्थ होते तो तुम्हारे सिर पर होते ही क्यों? जिसको जिसकी जरूरत है उसे प्रकृति ने वही दिया है।'

मैना उड़कर दूर जा बैठी। मृग उदास-सा उठ खड़ा हुआ। तब तोते ने उड़कर ऊंची डाल पर बैठते हुए कहा, 'पगली! प्रकृति ने जिसे जो दिया है, उसीसे उसकी ज़रूरत बनी है। यह तो हमारी बुद्धि का निर्णय है कि जो हमारे पास है, उसका यही प्रयोग है। तुझे जहां धरती और आकाश मिलते दीखते हैं, वही क्षितिज नहीं है। यह तू तब जान पाती जब तेरे पंख होते।'

हिरन ने धरती पर सिर रखकर कहा, 'जन्मभूमि! इसे हृदय दे कि यह प्यार कर सके। जो माटी को प्यार नहीं करता, उसे केवल रौंदना चाहता है, वह क्या जाने कि तू किस ममता से फूल उगाती है।'

परन्तु हिरनी फिर भी नहीं मानी।

७

सन्ध्या आई। चली गई। शावक लौट आया। उसने कहा, 'पिता! आज इतने उदास क्यों हो? मां कहां है?'

मां का नाम सुनकर हिरन ने कहा, 'आती होगी बेटा। मेरे पास बैठ। मेरा मन शंका से विह्वल हो रहा है। देख, वह सामने एक चांदी का ढेर-सा झर रहा है, उसे देखता है न?

शावक ने कहा, 'हां पिता! वही तो है प्रपात!'

हिरन ने कहा, 'हां पुत्र! ऊपर से वह भयानक है, नीचे वह वही जल है, जिसे पीकर हम प्यास बुझाते हैं। हमें वही लेना है जो हमारे लिए लाभदायक है।'

शावक समझा नहीं। चन्दा धीरे-धीरे उठने लगा। ऐसा उग आया जैसे सोने का खिला हुआ फूल। तब यूथ इकट्ठा हो गया और नृत्य में सब झूमने लगे। शक्ति की उदारता की भांति क्षुद्रता का अहम्मन्य अन्धकार चांदनी में विलीन होने लगा। समूह के जीवन से आनन्द का सुख जन्म लेता है।

हिरन ने कहा, 'पुत्र! तू जा! उनमें जाकर क्रीड़ा कर।'

पुत्र चला गया।

तब हिरन उठकर हिरनी को ढूंढ़ने लगा। उसने देखा कि वह प्रपात के सामने अपलक निहारती खड़ी थी।

उसने पूछा, 'प्रिये! क्या देख रही हो?'

हिरनी ने कहा, 'प्राण! देखती हूं कि यह वेग किस तरह जन्मा? इसका अन्त कहां है? यह कहां से आता है?'

हिरन ने कहा, 'यह पर्वत के पीछे से आता है, ऐसा मैंने सुना है।'

हिरनी ने पूछा, 'क्या इसका स्रोत किसीने नहीं देखा? वहां न जाने क्या होगा।'

हिरन ने उत्तर दिया, 'वहां केवल जल है जो पत्थरों के पीछे वर्षा से एकत्र होता है। मैंने गर्मी में उसे यूथ के साथ जाकर देखा था। आजकल वहां जाने का मार्ग नहीं है। पर्वत की इस दिशा में एक मरुभूमि है पीछे, वहां से जानेवाला कोई पार नहीं जा सकता।'

हिरनी ने कहा, 'चलो! प्राण! हम-तुम चलें।'

हिरन ने कहा, 'प्रिये ! बिना यूथ के जाना क्या उचित होगा ? हमें यूथपति से भी तो पूछना चाहिए ?'

हिरनी ने कहा, 'जब शक्ति में तुम उससे कहीं अधिक हो, तब तुम स्वयम् ही यूथपति क्यों नहीं बन जाते ? वह कितना लोलुप और स्वार्थी है; उसकी हिरनी सदव सबसे अच्छी घास चरती है।'

हिरन ने कहा, 'जिसके हाथ में शक्ति रहती है, वह कैसा भी भला क्यों न हो, उसमें अहंकार रहना आवश्यक है। उसके घर के लोग सदैव ही दूसरों से सम्मान प्राप्त करने का एकाधिकार प्राप्त कर लेते हैं। मैं गृहयुद्ध कर सकता हूं; किन्तु उससे जाति का क्षय होगा। बहुमत उसीकी ओर है। अतः यह कल्पना करना कि किसी मतविशेष या चिन्तन-विशेष में प्रत्येक व्यक्ति केवल गुणधाम बन जाएगा, व्यर्थ है। व्यवस्था को ठीक करने के लिए पद की तृष्णा से ऊपर है जागरण फैलाना।'

हिरनी ने कहा, 'प्राण ! तुम कायरों की-सी बात करते हो। पराजय को स्वीकार करते हुए तुम्हें लाज नहीं आती ? यूथपति के बलिदानों को कौन नहीं जानता !'

हिरनी ने व्यंग्य करते हुए कहा, 'बलिदान का फल क्या अहंकार और फलयोग है ?'

हिरन ने कहा, 'नहीं है, किन्तु परिवर्तन लाने के लिए महत उद्देश्य चाहिए। व्यक्ति की तृष्णा ही लोकव्यवस्था के परिवर्तन का आधार नहीं बन सकती।'

प्रपात के निर्घोष के ऊपर हिरन के वे शब्द बज उठे।

उसने फिर कहा, 'हमारे समस्त मूल्य हमारे जीवन के आधार बनकर जन्मे हैं। उन्हें हमारी प्रकृति ने अपने चारों की वास्तविकता के आधार पर समय-समय पर बदला और व्यवस्थापित किया है।

हिरनी चुप रही।

तब हिरन ने कहा, 'प्रिये चलो ! घर चलें।'

हिरनी धीरे-धीरे हिरन के साथ लौट आई किन्तु उसने तीन बार मुड़-कर प्रपात की ओर देखा और फिर सामने के पर्वत की ऊंचाई को आंखों से नापा और चरण उठाते ही उसे लगा कि वह ऊंचाई डग भर से अधिक नहीं

थी, क्योंकि डग-डग करके ही सारा पथ छोटा हो जाता है। फिर भी अपने मन की बात उसने अपने पति पर प्रकट नहीं होने दी।

गीत हो चुके थे।

शावक लौट आया। तब मौलसिरी की छाया में तीनों लेट गए।

८

रात गहरा गई।

तब बीन बजने लगी। उसकी मीठी रागिणी सुनकर तरुण हिरण चंचल हो उठे।

शावक ने जागकर कहा, 'पिता, यह कैसी मीठी आवाज़ है!'

पिता का घबराहट भरा जागरण देखकर वह कुछ भी नहीं समझा।

यूथ में एक कम्पन-सा छा गया।

तब यूथपति का गम्भीर शब्द सुनाई दिया, 'मेरे मित्रो! जानते हो यह क्या है?'

बहुत-से बोले, 'हम नहीं जानते।'

यूथपति ने पुकारा, 'चेतन?'

यह सुनकर मृग आगे बढ़ा और उसने कहा, 'मैं प्रस्तुत हूं यूथपति।'

यूथपति ने कहा, 'तुम जानते हो चेतन?'

मृग ने कहा, 'मैं जानता हूं यूथपति।'

तब यूथपति ने कहा, 'तो कोई तरकीब करो कि सब हिरन उसे देख लें, मगर कोई जाकर फंसे नहीं।'

मृग ने कहा, 'मैं यही करूंगा।'

फिर उसने कहा, 'मृगो! मृगियो! मेरी बात को ध्यान से सुनो। वह व्याधा है जो हमारी इस निर्बलता को जानता है कि हम संगीत के प्रेमी हैं, हमें सुन्दर से प्यार है; और,जब हम उसे देखते-सुनते हैं, तब उसके जाल में जा फंसते हैं। मृगो और मृगियो! अनुभव ही बताता है कि प्रत्येक सुन्दरता और मनोहरता, वास्तव में सुन्दर और मनोहर नहीं होती। भोली भक्ति और तन्मयता सदैव ही लाभ नहीं पहुंचाती। सुनो और जानो कि वह व्याधा हमारा काल है। वह दो चरणों पर चलता है, परन्तु दो में असंख्य हैं, जैसे दिन और रात करके समय फिसलता चला जाता है। वह काल

जन्म भी देता है कि अपने जैसे भक्षक पैदा कर सके और प्रत्येक जन्म में वह अपने आपको अवतरित कर देता है। जीवन को उसीने मृत्यु का दूसरा पक्ष बनाया है। प्रत्येक सृजन हर क्षण उसीके रूप में है, और प्रत्येक विनाश भी उसके रूप में वास्तव में एक नया निर्माण ही है। वह इतना आवश्यक और अवश्यम्भावी है कि एक न एक दिन वही विजयी होता है, क्योंकि वह बहुरूप भी है और उससे बच निकलना असम्भव है। वह सूर्य और चन्द्र जैसे नयनों से देखता है और पवन उसके स्वर का दास मात्र है; उसके गले में एक शृंगी है जिसे वह कभी-कभी बजाता है। उसके पास छः कुत्ते हैं, जो विभिन्न ऋतुओं जैसे सुन्दर हैं, किन्तु प्रत्येक का काम दौड़ना ही है और हम नहीं जानते कि उनकी गति कब बन्द होगी। उसकी छलना से बचना हमारे लिए आवश्यक है, क्योंकि हम उसके संगीत में फंसकर अपने को उसका अहेर बनाना अपने अज्ञान का प्रदर्शन समझते हैं। जैसा नक्षत्रों का जाल तुम काले आकाश में देखते हो, वैसा ही जाल वह फैलाता है और हमें पकड़ लेता है, क्योंकि हम उसपर चलना तो जानते हैं किन्तु उससे बचना नहीं जानते। कहते हैं, एक मृग बड़ा विचारक था। उसने कहा था कि यदि हम मृत्यु को जीत लें तो यह जाल हमारा कुछ नहीं कर सकता उसने अपनी विचारधारा फैलाई। उसके अनुयायी इतने कट्टर बन गए कि उन्होंने अपनी बात को ही अन्तिम सत्य माना। परन्तु कुछ दिन बाद जब सत्ता उनके दल के हाथ में आ गई तब मद उनमें भी छा गया। मद ही मृत्यु है और वे मृत्यु को ही जीतने का दिखावा कर रहे थे। मृत्यु अवश्यम्भावी है मृगो और मृगियो! कुछ जड़ी-बूटी ऐसी हैं जिन्हें खाने से हमारी ही एक जाति की नाभि में से सुगन्धि आने लगती है। कुछ ऐसी भी हैं जिन्हें खाकर बहुत दिन जिया जा सकता है। परन्तु मृत्यु को शरीरपात में नहीं रोका जा सकता। और मृत्यु शरीर का नाश ही नहीं है। हमने जीवन के कुछ मूल्य बनाए हैं। यद्यपि वे हमारे ही हैं, और हमारी ही जाति तक सीमित है, परन्तु हमारे सर्वश्रेष्ठ भावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका क्षय हमारे लिए वास्तविक मृत्यु है, क्योंकि उसमें कायरता है, स्वार्थ है, परस्पर एक दूसरे के प्रति घृणा और भय तथा अविश्वास है। शारीरिक मृत्यु में कुछ ही मरते हैं, किन्तु मानसिक मृत्यु में सारी जाति की ही मृत्यु

हो जाती है। अतः सावधान रहो। काल आ रहा है। वह अनेक रूपों में आता है। यही काल था जिसे देखकर पूर्वजों ने कहा था कि अहंकार को उदात्त बनाओ ताकि वह लोक के कल्याण में प्रवृत्त हो सके। लोक की ओर उन्मुख करने के लिए ही उन्होंने व्यक्तिपक्ष का खण्डन किया था और यूथ-जीवन की ओर प्रेरित किया था।'

मृग की बात समाप्त हो गई। तब बीन की मीठी आवाज़ और भी पास सुनाई देने लगी। तरुण और तरुणियां व्याकुल होकर बाहर आने लगे। उनका हृदय उसे सुनकर बेचैन हो उठता था। वे अपने को अपने बस में नहीं पा रहे थे।

यह देखकर मृग ने कहा, 'जिस तरह सर्प ऊपर से चिकना होता है, उसी प्रकार यह रागिणी भी मीठी है। परन्तु जैसे उसमें विष होता है, यह रागिणी भी विनाशकारी है। सुनो, मैं तुम्हें इस विषय की एक पुरानी कथा सुनाता हूं।'

तब वे सब रुक गए और मृग ने कहा, 'यूथपति! आप वृक्षों और स्त्रियों को तथा बालकों को लेकर झाड़ियों की ओट में चले जाएं। मैं इन तरुणों और तरुणियों को कथा सुनाकर आता हूं।'

हिरन के ऐसा कहने पर यूथपति ने आज्ञा दी और एक ओर भय, दूसरी ओर तृष्णा के बीच झूलते तरुणों और तरुणियों से मृग ने कहा :

प्राचीन काल में एक बार हिरनों की सभा हुई और उन्होंने यह तय किया कि एक बार किसी तरह व्याध की जांच करनी ही चाहिए। अतएव वे सन्नद्ध हो गए। एक ने छिपकर पीछा किया। दुर्भाग्य से हिरनों का एक तरुण जाल में फंस गया और तब बीन बजानेवाला, जो कोमल ललित-कला को जन्म दे रहा था, तुरन्त ही भयानक हो उठा और उसने हिरन को बांधकर उसकी एक भी विनती बिनासुने उसे नगर में ले गया। जैसे दीमकें अपने मिट्टी के घर बनाकर रहती है, उसी तरह आदमी भी घर बनाकर रहता है। बन्दी हिरन ने कहा, 'ओ व्याध! तू मुझे क्यों ले चल रहा है?'

व्याध ने कहा, 'तुझे खाऊंगा।'

बन्दी हिरन ने पूछा, 'लेकिन मैंने तेरा क्या अपराध किया है?'

व्याध ने सोचकर कहा, 'मेरा तो नहीं, पर तूने मेरी जाति का अपराध किया है।'

बन्दी हिरन ने पूछा, 'सो कैसे ?'

व्याध ने उत्तर दिया, 'मेरे भाई लोग बड़े ही परिश्रम से खेतों में अन्न उगाते हैं, तब तुम हिरन लोग चर जाते हो। इसीलिए तुम्हें मारना हमारा धर्म है। तुम इसीलिए बनाए गए हो कि हम तुम्हें खा डालें।'

बन्दी हिरन ने कहा, 'ओ व्याधे ! तुम अपना परिश्रम तो देखते हो मगर हमारा नहीं देखते। तुम कल के लिए संग्रह करने वाले धूर्त हो, हम केवल उदरपूर्ति करते हैं। तुम्हारा धर्म एक है, तो अपना भी एक धर्म है ! तुम्हारे लिए जो धर्म है, हमारे लिए वही महापातक है।'

इसके बाद व्याध ने उसे अपने राजा को बेच दिया।

बन्दी हिरन ने कहा, 'तू मनुष्यों का यूथपति है। तेरा धर्म क्या है ?'

राजा ने कहा, 'धर्म बड़ी विचित्र वस्तु है हिरन ! प्राणिमात्र का धर्म है स्वरक्षा करना। परन्तु विचित्रता यह भी है कि एक प्राणी की रक्षा तभी होती है, जब किसी दूसरे प्रकार का प्राण खाया जाता है। अतः प्रत्येक जाति ने धर्म उसीको माना है, जिसमें उसकी अपनी जाति की जय और पालन है।'

यह सुनकर छिपकर सुननेवाला मृग यूथ में लौट आया और तबसे मृगों में यही गाथा गाई जाती रही है कि गीत अपनी जाति का भला, चाहे दूसरा सुरीला भले ही लगे।

तब एक तरुण ने कहा, 'हे मृग चेतन ! जाति क्या मृग और मनुष्य योनि के लिए तुम कहते हो, या मृगों में जो पीले, काले, भूरे हैं उनके लिए भी ?'

मृग ने कहा, 'वे तो सब मृग हैं। वे तो समान हैं। समानता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है !'

मृग यह सुनकर स्फुरित हो गए।

तब मृग ने फिर कहा, 'बीन की आवाज़ आ रही है और जब स्वर पास आता है तब व्याध को भी पास आता हुआ समझना चाहिए, इसलिए अब सब बिखरकर अन्धेरे में छिप जाओ, ताकि वह पकड़ न सके, किंतु यूथपति

के शब्द की ओर ध्यान देना।'

इस तरह जब सब छिपने लगे तब हिरनी ने हिरन से आकर कहा, 'देखते हो! कैसा भयानक है यह स्थान! कैसी-कैसी मुसीबतें हैं यहां। अपना छोटा-सा परिवार है। उसे लेकर चलो कहीं और!'

हिरन ने कहा, 'ओ प्रिये! जब जीवन-मरण में समस्त जाति ग्रस्त है, तब तू अपना स्वार्थ मत देख। तेरा एक पुत्र है, उसे लेकर तू भागकर क्या अमर हो जाएगी? क्या कोई भी त्रैलोक्य में ऐसा स्थान है जहां मृत्यु नहीं है? जीवन की एकमात्र शक्ति एक दूसरे के साथ रहने में है। प्रतिभा का विकास समूह में ही तो होता है। उसीपर तो प्रभाव डालना है। जाति ही व्यक्ति के विकास का क्षेत्र है। परमात्म की सिद्धि तब ही होती है, जब आत्मा सार्वकालिक-सार्वभौम उदात्तीकरण को प्राप्त करके आत्मस्वार्थ को बिल्कुल ही छोड़ देती है। अतः तू छिप जा। अब अधिक समय नहीं है।'

हिरन ने उसे एक झाड़ी के पीछे करके कहा, 'देख, यहीं कहीं तेरा पुत्र भी होगा। उसे भी संभाल।'

हिरनी ने कहा, 'और तुम कहां चले?'

हिरन ने कहा, 'ऐसे समय में मुझे युद्ध के लिए प्राणों की ममता त्याग कर तैयार रहना चाहिए।'

हिरन चला गया और हिरनी सोचने लगी।

६

अन्धकार में छिपे हुए सब हिरन अब बीन की आवाज़ सुनने लगे। वे आपस में कुसमुसाकर बातें करने लगे :

'हाय, कैसा दिव्य संगीत है!'

'स्वर्ग में जब चन्द्र देवता अपने लम्बे सींग लेकर ऊंची शिला पर बैठकर धीरे-धीरे बिल्कुल नये केले के पत्ते के रंग की दूब को चबाते होंगे तब ऐसी ही मीठी तान यह मनुष्य उन्हें रिझाने को सुनाते होंगे।'

'स्वर्ग में तो हिरनों का ही राज्य है। मनुष्यों ने बेईमानी से इस धरती-पर विजय प्राप्त कर ली है। पहले मनुष्य भी हमारी तरह ही वन में रहता था। तब वह अपने शरीर पर इतने कपड़े डालकर अपने को दिखाने से शर्माता नहीं था।'

'वह अपने को क्यों छिपाता है ? उनकी मादा इतने धातु के टुकड़े क्यों पहनती हैं ?'

'मनुष्य का धर्म स्वार्थ है, और काम में वह अनियमित है। इसीसे उसे अपने ऊपर लज्जा आती है। अर्थ की ही सहायता से उसका बिका हुआ दयनीय जीवन बीतता है जिसके लिए वह सब कुछ करता है।'

'अर्थ क्या होता है ?'

'मनुष्य के अतिरिक्त किसी भी पशु और जन्तु, कृमि-कीट तथा विहंगम में, बल्कि जलचर, थलचर, नभचर किसीमें भी अर्थ को जीवन का आधार किसीने नहीं बनाया। अर्थ मनुष्य की सभ्यता का वह विकास है, जिसमें सहज को अविश्वास के कारण छोड़कर कृत्रिम का सहारा लिया जाता है।'

यों वे तरह-तरह की बातें कर ही रहे थे कि यूथपति ने आकर कहा, 'मृगचेतन ! मैं अंधेरे में भी सबको देख रहा हूं, फिर भी मुझे तुम्हारी स्त्री नहीं दिखाई दी। क्या तुमने उन्हें कहीं विशेष ठौर पर छिपा दिया है ?'

सुनकर मृग के भीतर आशंका सिहर उठी और उसे एक डर ने घेर लिया।

क्या सचमुच !

लेकिन वह इससे आगे नहीं सोच पाया।

उसने धैर्य धारण करके कहा, 'यूथपति, वह यहीं कहीं होगी। मैं अभी ढूंढ़ता हूं।'

यूथपति ने कहा, 'मुझे इसकी सूचना देना।'

मृग ने कहा, 'जो आज्ञा।'

यूथपति के आगे बढ़ जाने पर मृग को लगा कि उसके पांवों की शक्ति क्षीण हो गई है। वह अंधियारे की ओर हट गया और सोचने लगा :

क्या यह हो सकता है कि वह शावक को लेकर चली गई ? यूथ पर जब जीवन-मरण का संकट आया हुआ है उस समय उसने केवल अपनी ही चिन्ता की ?

इस विचार के आते ही उसे लगा कि उसमें तनिक भी शक्ति नहीं बची है। फिर ध्यान आया :

क्या यूथपति और बाकी सब यह समझेंगे कि हो न हो मृगचेतन का भी हाथ इसमें अवश्य होगा ?

कौन जाने ? सन्देह जब निराधार ही इतना बढ़ता है, तब उसका आधार मिल जाने पर लोक का मुंह कौन बन्द कर सकता है। पापी इतना बुरा नहीं माना जाता जितना वह, जिसपर पाप का लांछन लग जाता है।

अब तो मृग को काटो तो खून नहीं। कहां ता वह अभी पुकारकर उसे बुलाने की सोच रहा था, कहां अब गले की आवाज़ गले में ही रुंध गई। पुकारे भी कैसे वह ? जब यूथ संकट में है तब क्या वह बोलकर व्याध को अपनी जगह बतावे ?

उसे याद आने लगा।

कैसे चली गई वह ? क्या हो गया उसे ?

यहीं हमने आनन्द से रातें व्यतीत की थीं। यहीं वसन्त में हमने एक-दूसरे से रोमन्थित दूब लेकर चबाई थी। यहीं वर्षा की सनसनाती वायु में चमकती बिजलियों की छाया में हम एक दूसरे से सटकर सोए थे ! यहीं हमने स्वर्ण-सिकता पर खड़े होकर पारिजातों के नीचे उगते हुए सूर्य की साक्षी देकर कहा था कि हम इसी जन्म में नहीं जन्म-जन्मान्तर में इसी प्रकार एक दूसरे के साथी होंगे। जब आकाश में चन्द्र-देवता का चांदी का-सा आलोक छा गया था और महान हरिण-देवता नील आकाश के वन में विचरण करते हुए तारों की सुनहली दूब चरते-चरते आकाशगंगा की सुनहली-रुपहली सिकता को देख लेते थे, और वनभूमि में सारे बांसों में, पवन उनके अभिनन्दन में, बांसुरी-सी बजा रहा था और कभी-कभी मयूरी कलकण्ठ से सहज में बोल जाती थी और सोए कमलों से भरे सरोवर के किनारे हंस बैठे ध्यान-मग्न थे, तब हम दोनों ने ही कुमुदिनियों की चांदनी में समर्पित प्रेम की साक्षी देकर कहा था कि हे देवता ! हमें सदैव तुम हरिण-योनि में ही जन्म देना ! क्योंकि यह सबसे पवित्र है। जब नागरमोथा की जड़ें खोदकर खाने वाले जंगली सूअर आते थे, तब हम दोनों ने उस तरफ का रास्ता छोड़कर कितने प्रेम से अपना संकट टाला था !

क्या उसे कुछ भी याद नहीं आया ? क्या वह मुझे छोड़ गई ? क्या यही है स्त्री का हृदय ? महत्वाकांक्षा की मूर्खता के बहाने वह संकुचित स्वार्थी तृष्णा को साधने में लग गई ? क्या यही है प्रेम का अन्त ?

तब हरिण में काम से क्रोध भी उत्पन्न हुआ। और उसका विवेक हत होने लगा।

उसने करुण स्वर से घुटते-घुटते कहा :

ओ प्रिये ! तू चली गई, परन्तु तूने मेरे पुत्र का जीवन क्यों नष्ट कर दिया ? जातिविनष्ट वह, किस भविष्य का नियन्ता बनेगा ? ओ निर्दयी पाषाणी ! तूने मेरे प्रेम के फूल को कुचल दिया और उसकी सुगन्धि को इतना तिरस्कृत कर दिया ? यह तूने क्या किया कठोरहृदये !

ओ आयतलोचनी ! क्या यही उन सौगन्धों का मोल है ? क्या तूने स्त्रियों पर कलंक नहीं लगा दिया ? कुछ करने से पहले क्या यह नहीं सोचना चाहिए कि इसका फल क्या होगा ? कहीं मेरे अपने लाभ की तृष्णा सदा-सदा के लिए बहुतों के प्रति उचित करुणा और सौहार्द्र का मार्ग बन्द नहीं कर देगी ?

परन्तु तू क्यों सोचती ? तुझे तो तेरी वासना ने अंधा कर दिया था। अपनी कोख से जन्मे को अपना रक्त-मांस समझकर ले गई ? अरी, क्या वह अमर रहेगा ? औरों की तुझे चिन्ता नहीं ?

और मुझे तूने अपमानित कर दिया। लोक में जिसका बंधु अनुचित कार्य करता है, उसे भी तो सब अविश्वास से देखते हैं !

और उसने विह्वल होकर कहा, नहीं ! तू गई नहीं है ! अब मुझे और मत सता ! प्रिये ! छिपी मत रह ! आ ! बाहर आ जा ताकि मैं गौरव से अपना सिर उठाकर फिर सबके सामने चल सकूं। अन्यथा अब मुझे पूछेगा ही कौन ?

जब उसके स्वर को कोई उत्तर नहीं मिला तो उसने आगे बढ़कर कहा, 'ओ विहंगम ! ओ सुन्दर बया ! तू जो इतना प्यारा-सा घर बनाकर रहती है, क्या तूने मेरी स्त्री और बालक को कहीं देखा है ? देख, व्याध चक्कर दे रहा है। ऐसे में मैं क्या करूं ? उनका खो जाना तो मैं सह सकता हूं, क्योंकि जीवन-मरण तो एक दिन सबको ही सहना पड़ता है, लेकिन प्रश्न तो स्त्री और सन्तान के सम्मान का है। अपमान में कैसे सहूंगा ? उस अपमान की आग उसकी मीठी स्मृतियों को भी तो पिघला-पिघलाकर बहा देगी ! कीचड़ में गिरा कमल कब तक अपनी सुन्दरता को जीवित रख सकता है। बया, ओ री बया ! मुझे बता दे ! तूने उन्हें कहीं देखा ? अब

की बरसात में मैं तुझे इसके बदले में ढूंढ़-ढूंढ़कर वह सरोवर दिखाऊंगा जहां ढेर-ढेर जुगनू होंगे; उनकी गहरे कांच के-से काले अन्धेरे में दीवाली-सी जगमग होगी। तू तब जुगनू पकड़ लाना और अपने घोंसले में दीप जलाना।'

बया ने कहा, 'मीत! मेरा सिर लाज से झुक गया कि स्त्री-जाति ने ऐसे समय धोखा दे दिया। जब चांद पीपल के पीछे था तब निगोड़ी किरन पत्तों से खेलने लगी। तब मैंने उजाले के लिए इधर के तिनके सरका दिए थे। मैं न देख पाई कुछ।'

हिरन हट गया और अंधेरे में गिरकर रोने लगा—क्या करे? क्या न करे?

उस समय मैना और तोता उसके पास आ बैठे।

मैना ने कहा, 'मृगचेतन! रो मत! संकट के समय धीरज धर!'

'कैसे हृदय को बांधू मैना।' उसने सुबकते हुए कहा।

तोते ने कहा, 'वह अवश्य चली गई।'

कहां गई होगी वह?

हठात् हिरन को याद आया।

प्रपात की ओर!

उसने देखा, चांदनी में वह ऐसा चमक रहा था, दूरी पर, जैसे पिघला हुआ सोना हो।

उसने सोचा, वहां जाऊं।

तुरन्त तभी व्याध के कुत्तों के भूंकने की कर्कश-सी आवाज़ सुनाई दी, जिसे सुनकर पीड़ा उसके हृदय को मरोड़ने लगी।

तोते ने धीरे से कहा, 'उठ! कोई आ रहा है।'

मैना ने कहा, 'पुरुष बन!'

वे दोनों उड़ गए। पास के अमलतास ने कहा, 'ओ मृग! किसे खोजता है? वह तो मेरी छाया में होकर ही गई थी अपने बच्चे के साथ। शीशम ने कहा भी था, अरी कहां चली। उसने अनसुनी कर दी तो नागफनी ने क्रोध से उसे खरोंचा भी था। किन्तु वह नहीं मानी। वह तो चली गई।'

मृग फिर खड़ा हो गया और उसने स्वर्ण सिकता की ओर देखकर कहा,

'सुना कान्तारभूमि ! आज मैं कहता हूं कि जिनके पांव हैं, वे अस्थिर हैं। जिनकी जड़ें धरती में नहीं गड़ी हैं, वे न दूसरों को फल दे सकते हैं, न छाया; वे तो अपने लिए रहते हैं, और उनमें दुःख सहने की सात्विक वृत्ति भी बहुत कम होती है। और उनमें से फूलों की सुगन्धि भी नहीं झरती। गति की सामर्थ्य होने पर मन को चंचल होने से रोकना कितना कठिन काम है ! जो भी हो, मैं इस समय लोक को व्यक्ति से ऊपर रखूंगा। यदि यूथ नहीं रहा, तो यह सृष्टि सूनी हो जाएगी। बनाने वाले की सर्वश्रेष्ठ रचना हिरन है। यदि वही खो गई तो इस सृष्टि का तात्पर्य ही क्या है ? हिरन को चन्द्र देवता ने ठीक अपनी आकृति का बनाया है। वह देवता एक है। स्वयं अमूर्त है। अतः अब मैं दुःख नहीं करूंगा।'

अन्धकार में ही यूथपति आगे बढ़ आया और उसने कहा, 'मृगचेतन !'

मृग ने कहा, 'यूथपति !'

यूथपति ने कहा, 'कुछ पता चला ?'

मृग ने उत्तर दिया, 'देव ! लगता है वह चली गई !'

'चुप रहो ! चुप रहो !' यूथपति ने कहा, 'ऐसे समय में यह शब्द मत कहो। इससे बुरा उदाहरण प्रस्तुत होता है। यदि वह गई तो जाने दो। पर हो सकता है, वह कहीं फंस ही गई हो ?'

फिर रुककर कहा, 'क्या उसे ढूंढ़वाना ठीक होगा ?'

मृग ने कहा, 'प्रभु ! ढुंढ़वाने में मृगों के जीवन क्या संकट में नहीं पड़ जाएंगे ? सबके लिए एक का बलिदान देने में कोई हानि नहीं।'

यूथपति ने गर्व से कहा, 'हम तुमसे प्रसन्न हैं मृगचेतन ! तुम्हारा आदर्श महान है।'

मृग ने कहा, 'व्यक्ति आता है, चला जाता है। कोई भी अमर नहीं रहता। उसका कर्म ही रह जाता है और उसको भी याद करने के लिए अपनी ही जाति चाहिए।'

'ठीक कहते हो !' यूथपति ने कहा, 'आज तक के हिरनों ने केवल इस संसार की व्याख्या की है। हम तो इस संसार को बदलने वाले हैं। कहते हैं पहले सब हिरन समान थे। बाद में जब हिरनों के झुंड चरागाहों के लिए लड़ने लगे तब विजेताओं ने पराजितों को दास बना लिया। दासों ने जब

विद्रोह किया तब चन्द्र देवता के उपासक हिरनों ने कुछ योद्धाओं से मिलकर एक राजा हिरन चुन लिया और भूमि आपस में बांट ली। बाकी हिरन उनके लिए काम करने लगे। तब शोषण की अति हो गई। उस समय हिरनों की समानता का स्वर उठा और हिरनों ने चरने के नये तरीके निकाले। उसके बाद क्रान्ति हुई। अब केवल दल का राज्य है। सब कुछ सबका है। परन्तु दल ही सबका प्रतिनिधि है, और मैं सबका प्रतिनिधि हूं, अतः मैं ही स्वामी हूं। मैं तुम्हें अपना निकटस्थ बनाता हूं।'

मृग ने कहा, 'देव ! आपकी जय ! मैं आपका तभी तक सहयोगी हूं जब तक आप मृगों के कल्याण में लगे हैं। मैं तो सेवक हूं।'

यूथपति ने कहा, 'कहीं तुम उस ब्रह्मचारी हरिण के अनुयायी तो नहीं हो जो प्रचार करता डोलता है कि भूमि सबकी है। क्या तुम समझते हो कि हमारी भूमि के बाहर के प्रभुवर्गीय हरिण कभी अपनी सत्ता का त्याग कर देंगे ? क्या मृग जाति मूलतः ऐसी भली है कि वह भूमि का मोह छोड़ सकेगी ? यदि वह ब्रह्मचारी मृग मेरे राज्य में आए तो मैं उसे बन्दी बना दूं।'

मृग ने कहा, 'यूथपति ! व्यक्ति और दल में जब तक अधिकार की तृष्णा रहेगी तब तक कभी पृथ्वी पर सुख नहीं होगा। तृष्णा मूल है, सम्पत्ति और अधिकार केवल उसके बाहरी आधार हैं। इन्हींके कारण तो हिरनों में यह विद्वेष बढ़ा।'

'मुझे तुमपर सन्देह है मृगचेतन !' यह कहकर यूथपति ने अपने सींग झुकाए कि मृगचेतन पर आक्रमण करे, किन्तु उसी समय एक ओर से मृगों का करुण क्रन्दन सुनाई दिया।

मृग ने कहा, 'यूथपति ! आवेश त्यागकर देखिए। इस समय भीतर की फूट छोड़िए ! सोचिए !'

'सोचता क्या रहा है मृगचेतन !' यूथपति ने आक्रमण रोककर कहा, 'जो कुछ हिरन-चिन्तन था, वह हमारा दार्शनिक कर गया। उसके आगे सोचना लोक का अहित है। हमें तो यह प्रमाणित करना है कि प्रकृति भी जो कुछ करती है, वह उसीके कथनानुसार करती है। मैं देखो कितना दयालु हूं कि तुम्हें छोड़े देता हूं इस समय। याद है, मुझसे पहला यूथपति तो

सन्देह पर ही मरवा देता था। वह कितना बर्बर था।'

मृग ने कहा, 'देव ! आपने तब विद्रोह क्यों नहीं किया ? विचार-स्वातन्त्र्य का आपने प्रयोग क्यों नहीं किया ?'

यूथपति ने हंसकर कहा, 'मूर्ख ! तब मेरे पेट में किसीका सींग चुपचाप घुस जाता।'

कोलाहल बढ़ता जा रहा था।

बीन की ध्वनि कहीं पास ही सुनाई दे रही थी।

कैसी मोहिनी तान थी वह !

पारिजात ने कुसमुसाकर कहा, 'हाय अहेरी ! तुझे भी देनेवाले ने कैसा चमत्कार दिया है। वन भूमि की निस्तब्धता में तूने कितना सौन्दर्य-सा भर दिया है और फिर तू उसके बहाने कैसा क्रूर कर्म करने आया है। कैसा है यह मनुष्य ! सुवर्ण देकर सत्य को कुचलता है, असत्य को खरीदता है और अपने स्वार्थ और अपनी वासना को, अपने अहंकार, दम्भ और मूर्खता में अपना सर्वश्रेष्ठ आदर्श कहता है। इसने अपनी नीचता को छिपाने के लिए भी कैसे-कैसे छद्म बना लिए हैं और तिसपर तुर्रा यह कि इसी पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए इसकी जाति में नित्य दार्शनिक जन्म लेते हैं, नित्य पैगम्बर आते हैं। और परिणाम क्या होता है ? बौद्धिक दासता को यह धर्म और संस्कृति कहता है और फिर आपस में भी लड़ता है। इसका कल्याण कैसे हो ! !'

पारिजात चुप हो गया।

और उसके उद्वेग से कुछ सुगन्धित फूल नीचे चू पड़े।

इसी समय हिरन ने देखा कि एक बच्चा अचानक खुले में निकल गया और उसे अहेरी पकड़ने ही वाला था कि हिरन ने चौकड़ी भरी और सामने जा पहुंचा।

व्याध ने उस हृष्ट-पुष्ट को देखा तो बाण संधाना और सन्-से छोड़ दिया। बच्चे को भगाने में लगे हुए मृग के शरीर में वह बाण घुस गया और बच्चा तो फिर अंधेरी झाड़ियों में खो गया लेकिन हिरन धरती पर गिरकर छटपटाने लगा।

यूथपति ने मन ही मन सुख का अनुभव किया कि एक शत्रु तो अपने

आप ही राह से दूर हो गया, फिर भी वह बोला नहीं क्योंकि बाकी के हिरन और हिरनियां आपस में कहने लगे :

'मृगचेतन शहीद हो गया।'

उस बच्चे की मां ने अपने शावक को छाती से चिपटाकर कहा, 'बच्चे ! याद रखना मृगचेतन एक दिन दूसरे के लिए अपना बलिदान दे गया।'

'सच मृगचेतन कितना महान् है ! '

'हम इसकी स्मृति में एक स्मारक बनाएंगे।'

'जीते जी हमने कभी इसकी कद्र नहीं की।'

'बालक ही हमारा भविष्य है। जो उनके लिए त्याग करता है, वही महान है।'

तब एक ने कहा, 'हाय ! अब उसकी स्त्री कितना रोएगी ?'

यूथपति ने कहा, 'वह पहले ही बच्चे को लेकर भाग गई।'

यह सुनकर एक हिरन ने कहा, 'अच्छा ! यह बात है। उसके आगे-पीछे कुछ रहा नहीं ! बिचारे और करते भी क्या ?'

लेकिन जनमत इस समय ऐसी बात सुनने को तत्पर नहीं था। तब यूथपति ने कहा, 'मृगचेतन ने लोक के लिए अपने प्राण दे दिए। वह चाहता तो स्वयम् भाग सकता था। उसने लोक के लिए अपनों की भी चिन्ता नहीं की। दूसरे के लिए प्राण दे दिए।'

लोगों ने कहा, 'यूथपति महान हैं। मृगचेतन से भी पहले इनका स्मारक बनाना चाहिए क्योंकि सत्य को पहचानना यही हमें सिखाते हैं।'

उधर व्याध पास आ गया और बोला, 'ओ मृग ! क्या यह तेरा पुत्र था ?'

मृग ने कहा, 'सब हिरनों के बच्चे मेरे बच्चे हैं।'

अहेरी ने कहा, 'व्यभिचारी ! क्या तू ही सबसे बलवान है ?'

मृग ने हंसकर कहा, 'तो क्या मनुष्य समाज में लोक-प्रेम की भावना पर इतना अविश्वास किया जाता है ?'

अहेरी ने कहा, 'पशु ! तू मनुष्य के सामने अपने को रखने का साहस करता है ? क्या तू नहीं जानता मैं तेरा विजेता हूं ?'

मृग ने उत्तर दिया, 'तू सच कहता है। सत्य वही कहलाता है जिसे

विजेता अपने शस्त्रबल से प्रमाणित करता है। अब मुझे यह मत बता कि मेरा अपराध क्या था जो तूने मुझे मार डाला, क्योंकि खेत चर जानेवाला बहाना मुझे मालूम है और शताब्दियों से तू हमारी जाति का वही अपराध दुहराता आया है।'

अहेरी ने मुस्कराकर कहा, 'तू करता भी तो ऐसा ही आ रहा है!'

तब हिरन ने कहा, 'ओ अहेरी! मुझे सुख से मरने दे।'

अहेरी ने कहा, 'सुख! मौत में भी सुख? वह तुझे कैसे मिल सकेगा?'

हिरन ने कहा, 'अपनी बीन बजाता रह ताकि मरते समय मैं उस मीठी ध्वनि में अपने शरीर की पीड़ा को भूल जाऊं। मैं यह सोचता हुआ मरूं कि मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। मिठास से जीवन में बड़ी गहरी लीक छूटती है। उसे देखकर मैं तेरी जाति की क्रूरता को भूल जाऊंगा और मुझे यही याद रहेगा कि तेरे यहां ऐसी मादाएं भी हैं जो ऐसी सन्तान को जन्म देती हैं, जिनके हाथों बीन जैसी प्यारी चीज़ बनती है। अभी मैं मरा नहीं हूं, अतः तू मुझे अपनी बीन सुना।'

तब अहेरी बीन बजाने लगा। हिरन ने अचानक ही कहा, 'अहेरी! तेरे पांव छुऊं। इसे मत बजा।'

'अब क्यों रोकता है हिरन! मुझसे तेरा दुःख नहीं देखा जाता। क्या करूं। मनुष्य जाति का हृदय बहुत ही कोमल होता है। वह सुन्दर से सुन्दर को सहेजकर रखती है। युद्धभूमि में इसीलिए हम लाल सूली का दल भेजते हैं, जिसका कार्य घायलों की सेवा करना होता है।'

हिरन ने कहा, 'ओ ढोंगी! चुप रह और लाज से ढंक जा। मुझे मार-कर तू अहिंसा की बात करता है। घाव करके मरहम लगाना तेरी ही जाति का कार्य है। स्वार्थ के लिए तू हत्या को भी धर्म और लोकोपकार कहकर वीरता के गाने गाता है। यह बीन मत बजा। इसे सुन मुझे तो सुख होता है, पर मुझे ध्यान आता है कि इसकी आवाज़ से दूसरे कहीं फंस न जाएं, क्योंकि तू इसी आवाज़ से तो हमें फुसलाता है! मुझे दुःख से मरना स्वीकार है, न कि उस सुख से जो दूसरों के लिए दुःख का कारण बन जाए।'

तब हिरन बड़बड़ाया, 'ओ पवित्र वनभूमि! अन्तिम प्रणाम स्वीकार कर। इतने ही दिन के लिए यह रूप मिला था और इसमें एक चेतना भी

मिली थी। इनका लालन-पालन तूने किया। इसीलिए तेरा आभार स्वीकार करता हूं। तू मेरी मां है। तू मेरी दीपशिखा का दीपक है। जननी, मुझे अपने पापों के लिए क्षमा कर दे।'

उसने फिर कहा, 'तृष्णा का अंधकार मन को घेरे रहता है। अमर प्यास भार बनी डोलती है। व्योम-अवनि, ओर-छोर यही एक व्याकुलता-सी छाई रहती है। अब सारी भूमि व्यर्थ हो गई। वन भी मेरे लिए प्राण-हीन-सा हो जाएगा, क्योंकि मैं नहीं रहूंगा। जो स्वर्णिम घर बसाया था, वह उजड़ गया है। चुन-चुनकर मैंने जो स्नेहदीप सांधा था, वह पुण्यकाम अन्तस् में आप ही न जाने कहां विलुप्त हो गया। लेकिन सिरजन की थाह अभी अन्तस् में बाकी है। चैत और मधु की ललाम छायाओ, प्रणाम! ओ विहंगो! फिर नये तृण लाकर नये-नये नीड़ों का निर्माण करना। फिर कल-रव की मरोर से शून्य को छविमान बना देना, क्योंकि मृत्यु और जीवन दोनों ही एक खेल हैं। मैं जीवन की ज्वाला को नया प्रकाश दूंगा। सकाम मैं यौवन की महिमा को अर्पण करता हूं अपना अभिनन्दन। मेरे फल सब काल बीच निष्कलंक होगा, क्योंकि मैं जो अथ का नश्वर विराम हूं, अब इति को नई गति दे जाऊंगा।

'मैं जानता हूं कि यह सलोनी माटी कभी नाश-निर्माण में चुक नहीं जाती। इसीलिए बाती की तरह बंट-बंटकर मैं सदा यहीं इसी दिवले में धर दिया जाता हूं। काल मुझे ज्वाला की भांति घेर लेता है। कुछ दिनों में दीन बनकर यहां जला करता हूं। किन्तु इस जलन को भी एक सार्थकता मिलती है, वह है ज्योति का वरदान। सीमा को तोड़कर देखने से मैं नहीं डरता, मुझे लघुता का भान नहीं होता। हृदय जो आलोकित हो उठता है तब मेरी अल्पता भी बड़ी सप्राण बन जाती है। सचमुच, यह विवश आक-र्षणों की वेदना देखकर मुझे तृप्ति ही नहीं होती। मैं ज्योति का निश्वास हूं या माटी के रंगों का खेल, अभी तक यही सोचता हूं।'

उसकी तड़पन देखकर मैना गाने लगी।

'ओ दिवला! मैं तेरी अर्चना करूं। फिर तू उदास क्यों है?

'मुझे यह तो बता कि अब तक तेरी माटी कितने उच्छ्वास लुटा चुकी है?

'ओ पन्थी ! माटी के इस पथ में तूने कितने पाश झेले हैं ?'

हिरन ने कहा, 'मैना ! तू सच मत पूछ। मैं मर रहा हूं। सचमुच ! इस समतल में कुछ परिधि मिल जाए, इसीलिए मैंने सब कुछ स्वीकार किया था। सारी तृष्णा केवल इतनी थी कि किसी तरह अपने भीतर ही कुछ प्राप्त कर लूं। किन्तु सिरजन और विकास की पहेली सुलझाते हुए मैंने केवल यही देखा कि यह तो केवल तपन थी जिसका कोई अन्त ही नहीं था ! मन की चाही किसीको कब मिल पाई है ? मैंने तो अपनी निधि भी स्वयं ही लुटा दी। पर जिस दिन के लिए सब कुछ किया था आज अन्त में वही वेला आ पहुंची है।'

मैना का स्वर और करुण हो गया और उसने भीगी आंखों से देखते हुए फिर अपना गीत छेड़ा :

'ओ दिवला ! क्या सचमुच आज तेरा स्नेह लास प्राप्त नहीं कर गया ?

'भले ही अपना ही स्नेह पीने का तुझे अधिकार नहीं मिला, पर वह किसीके हित तो जला, क्या यही तेरी विजय का उपहार नहीं है ?

'ओ दिवला ! मैं तेरी बलिहारी ! तू तो अंधियारे की आशा है।

'मुझे बता ! अगर तेरी माटी पकी न होती तो क्या ज्योति का विकास होता ? अरे तेरी तो सार्थकता ही यह थी कि तू जलकर प्रकाश करता।

'ओ दिवला ! मैं तेरी अर्चना करूं, तू मुझे विश्वास जैसी अमूल्य निधि देता जा।'

गीत सुनकर व्याध ने सिर हिलाया। मृग के मुख पर मुस्कराहट छा रही थी।

तभी एक करुण पुकार सुनाई दी, 'मां ! मां !!'

उस पुकार को सुनकर मृग में चेतना-सी लौट आई और उसने कहा, 'कौन ? यह तो मेरे पुत्र की-सी आवाज़ लगती है।'

पुकार सुनाई दी, 'पिता ! पिता !'

मृग छटपटाने लगा।

यूथपति ने कहा, 'क्या वह विश्वासघातिनी का पुत्र लौट आया ? क्या तुम उसपर विश्वास कर सकते हो ?'

मृगों ने कहा, 'क्या विश्वास ! ! कैसा विश्वास ! ! यह तो मां के संग गया था ! फिर कैसे लौट आया ! ! यूथपति ! अब भी समय है। जब स्वदेश पर संकट हो और रहना असम्भव लगे तब उस भूमि को अपना नहीं कहना चाहिए।'

'ठीक है। यही आपद्धर्म है। चलो हम भाग चलें।' यह कह वे भाग चले।

मार्ग में शावक दिखाई पड़ा। वह चिल्लाया, 'मुझे भी ले चलो ! मुझे मत छोड़ जाओ। मैं अकेला हूं।'

'विश्वासघातिनी के पुत्र !' यूथपति ने उसे सींगों से धकेल दिया और बच्च लड़खड़ा कर नीचे ढुलक गया। यूथ तो शीघ्र ही अंधकार भरे वृक्षों के नीचे गायब हो गया। किन्तु बच्चा लुढ़ककर वहीं आ गया जहां व्याध था। व्याध ने उसे झपटकर गोद में उठा लिया और वह हंसकर बोला, 'अरे मृग ! देख कैसा छौना हाथ आया है।'

मृग ने देखा तो करुण स्वर में रोता हुआ बोला, 'ओ व्याध ! तुझसे करुणा की भीख मांगना तो व्यर्थ है ही। अतः यह तो नहीं कहता कि इसे छोड़ दे। पर एक मुझ मरते की याचना है। यदि उसे पूर्ण कर देगा तो मैं यही समझकर मरूंगा कि मनुष्य में सबसे अधिक दया है।'

व्याध ने प्रसन्न होकर कहा, 'वर मांग।'

'मुझे इससे कुछ पूछना है।'

'तो पूछ।'

तब मृग ने कहा, 'बच्चे ! तेरी मां कहां ले गई तुझे ? वह कहां है ? तू कैसे लौट आया ? यूथ में क्यों नहीं गया ?'

बच्चे ने रोते हुए कहा, 'पिता ! जब हड़कम्प मची तो उसने कहा कि पुत्र मेरे साथ चल।

'मैंने कहा, बाकी तो सब यहीं हैं। पिता भी तो यहीं हैं।

'उसने कहा, पुत्र ! बलवान ही शासन करते हैं। यह सब मूर्ख हैं। मृत्यु इनके सिर पर खड़ी है। हज़ार हिरन भी दो सिंहों को नहीं मार सकते, क्योंकि जहां आगे के मरे कि पीछे वालों के पांव अपने आप उखड़ जाते हैं। अतः मेरे साथ चल।

'मैंने कहा, पिता को साथ ले ले।

'वह बोली, तेरा पिता परम मूर्ख है। उससे कहने का अर्थ है कि पहले वह हमीं को मरवा डालेगा।

'तब हम भाग चले।'

यह सुन मृग ने कहा, 'ओ दैव! यह मैं क्या सुन रहा हूं। ओ पुत्र! तू मेरा पुत्र क्यों हुआ? अभागे! जन्म लेते ही क्यों न मर गया। बिना सिखाए ही चपल सिंह तक का बच्चा जानता है कि उसे घास नहीं खानी है, चाहे प्राण भले ही चले जाएं, परन्तु तू नहीं सीख पाया कि जाति का गौरव कैसे रखा जाए! व्याध मुझे एक बाण और मार क्योंकि यह दुःख मुझसे नहीं देखा जाता।'

व्याध ने कहा, 'तेरे मन की करूंगा रे मृग। पर इसकी पूरी बात तो सुन ले।'

किन्तु मृग नहीं सुन पाया। वह मर चुका था। यह देखकर व्याध ने उसे बांध लिया और बच्चे से कहा, 'अब तुझे मैं जीवित ही ले चलूंगा। तुझे मारूंगा नहीं क्योंकि मुझे खाने को और बेचने को इसका मांस बहुत है। तुझे किसीको बेच दूंगा ताकि तू किसीके उपवन में पल सके।'

बच्चे ने उसके चरण चूमकर कहा, 'ओ त्रिलोक के दयालु स्वामी! ऐसी करुणा मैंने नहीं देखी।'

'अरे तूने देखा ही क्या होगा बच्चे? ठहर जा, मैं इसे उठा लूं तब बताना।'

यह कह उसने नीरव वनभूमि में हिरन उठा लिया और मृग के बच्चे को लेकर चल पड़ा।

१०

राह चलते शिकारी ने कहा, 'ओ बच्चे! तू अपनी बात कह।'

बच्चे ने कहा, 'दयालु! जब मैं मां के साथ भागा तो वन के सघन अन्धकार में मेरे शरीर में कांटे छिलने लगे।

'मैंने कहा, मां, मैं कैसे चलूं?

'मां ने कहा, पुत्र! विजय का पथ कठिन ही होता है। नयी भूमि की प्राप्ति के लिए नये-नये कष्टों का सामना करना पड़ता है। अतएव तू मेरे

पीछे-पीछे भागता आ।

'वह तेज भागते चली। मैं हांफने लगा।

'इसी समय मुझे लगा, कोई मुझे घूर रहा था।

'मैंने पुकारा, मां ! यह कौन है ?

'मां चिल्लाई, वत्स ! वह भेड़िया है। उससे बचना कठिन है। मैं तुझे नहीं बचा सकती। हाय, बस यहीं तेरे जीवन का अन्त है। अगर मैं आई भी तो भी तू नहीं बचेगा। हम दोनों ही मरेंगे। मैं तो फिर मां बन लूंगी और मेरी कोख भी भर जाएगी। अतः तू ही मर। मैं तो चली।

'यह कहकर वह तो भाग गई, मगर एक चील को मुझपर दया आ गई। उसने झपटकर भेड़िये की आंखों पर पंख फड़फड़ाए और कहा, बच्चे ! भाग जा।

'मैं अन्धेरे में भाग चला और मां के प्रति घोर घृणा मेरे मन में जाग उठी।

'भाग्य ने मुझे ऐसे भयानक दृश्य दिखाए कि पता नहीं मैं बचा कैसे रह गया। एक व्याघ्र की एक रीछ से लड़ाई हो रही थी। विकराल गर्जन हो रहा था। मैं फिर भागा। देखा कि हाथियों का झुंड मस्त होकर एक सरोवर के पानी को गंदला करता हुआ कमलों को सूंडों से उखाड़-उखाड़ कर फेंक रहा था। मुझे डर हुआ कि कहीं कुचल न जाऊं।

'मैं वहां से भी भागा।

'जिस वन को मैं सुन्दर समझता था, वह इतना भयानक भी था, यह मैं क्या जानता था ? देखा कि एक जगह दलदल थी जिसमें एक गैंडा धंसा जा रहा था और बुरी तरह चिल्ला रहा था। उसी समय सरकण्डों के पीछे जंगली सूअरों ने नीलगायों पर हमला कर दिया।

'मैं फिर निकल भागा।

'दैव जिसे बचाता है, वह शायद मरता नहीं और तब मैं अपने घर ही में ही आ निकला। जीवन सचमुच ऐसा प्यारा होता है कि उसके लिए प्राणी सब कुछ करता है। बड़े से बड़े खतरे को भी वह सहज समझकर झेल लेता है। बाद में सोचता हूं तो अभी तक रोंगटे खड़े हो जाते हैं। लेकिन घर आते ही चैन की सांस भी न ले पाया था कि मुझे यूथपति ने तेरे सामने यह कहकर धकेल दिया कि मैं विश्वासघातिनी का पुत्र था। ओ दयाल,

यही मेरी कहानी है।'

व्याध ने कहा, 'मेरे साथ चल। मैं तुझे नहीं मारूंगा।'

जब वे बरगद के पास पहुंचे उसने अपने नीलम, मरकत और लालों जैसे पत्ते हिलाकर कहा, 'ओ बच्चे। तू किधर जा रहा है ? क्या तू इतना निर्लज्ज है कि पिता के हत्यारे का दास बना है ?'

बच्चे ने कहा, 'जिसमें इतनी शक्ति है कि मेरे पिता को मार सका, वह क्या मुझे नहीं मार सकता ? अपने से सबल की तो दासता ही स्वीकार करना अच्छा है। पिता की भांति मरने से क्या लाभ ! दासता और स्वामित्व तो मौके की बात है, किन्तु जीवन एक ऐसी अवस्था है जिसका कोई स्वांग नहीं भर सकता।'

बरगद ने पुकारकर कहा, 'ओ अनजाने ! तू जो इतना बड़ा चमत्कार करने वाला जादूगर है कि तूने मेरे एक बहुत छोटे-से बीज में मेरी विराट काया को समेटकर रख दिया है, तू बता सकता है कि प्राणी में इतना भय क्यों है ? यायावर पवन कहता था कि न केवल पृथ्वी, वरन् आकाश के नक्षत्र और शून्य और सब कुछ एक ही लहर, उसके प्रतिरूप एक ही भूत पदार्थ का बहुरूप है। एक ही भूत पदार्थ के विभिन्न संघटन से विभिन्न रूप बनते हैं। इन रूपों का हर क्षण लहर रूप में परिवर्तन हुआ करता है। उसी एक मूल-पदार्थ के विभिन्न संघटनों में इतने गुण हैं कि असंख्य रूप-गुण विद्यमान होते हैं। उसीसे मैं बना हूं, उसीसे तू बना है ! उसीसे पशु और उसीसे प्राणि-मात्र बने हैं। सब कुछ एक है फिर बहुरूप में सब कुछ अपने ही दूसरे रूप से डरता क्यों है ?'

तब एक विशाल अजगर ने व्याध के सामने सरक कर पथ रोककर कहा, 'मैं यहीं पास में पड़ा हुआ देखता रहा हूं। जब तू छोटा-सा था, तभी मेरा जन्म हुआ था।'

'हां, हां,।' बरगद ने कहा, 'मुझे याद है। कह तू क्या कहता है।'

'मुझे भूख लगी है।' उसका भारी स्वर गूंज उठा।

उसे देखकर शावक और व्याध दोनों थरथर कांपने लगे।

व्याध ने कहा, 'हे महानाग ! तू देवता है। ले, यह बलि ले।' यह कहकर उसने अजगर के सामने चिल्लाते हुए शावक को फेंक दिया

और हिरन को लेकर भाग चला। बरगद चुप हो गया। अजगर ने उस शावक को निगल लिया और फिर घनी अंधियाली छायाओं की ओर धीरे-धीरे सरक गया।

कीर बुदबुदाया :

'भूख ! भूख !! वही भयानक भूख !! प्राणिमात्र के जीवन की इच्छा, सुख-भोग की इच्छा—जिजीविषा और रिरिंसा !! और कुछ नहीं !!'

और तब उसने तिनके जुटा-जुटाकर नीड़ बनाना प्रारम्भ कर दिया।

चन्दा तब चमकते हुए ढलान पर आ गया था। उसने पृथ्वी के कार्य-व्यापारों को अधमिची आंखों से देखा और कहा, 'यह पृथ्वी के निवासी नहीं जानते कि जिसे वे चांदनी कहते हैं, वह मेरे शरीर पर कितनी प्रचण्ड धूप है। वह तो केवल जलन की छाईं पाते हैं और तभी उन्हें काम-कल्लोल सूझती है।'

और उसने देखा, हिरनी बड़े यत्न से मरुभूमि के बल वाले पहाड़ पर चढ़ती चली जा रही थी।

११

तनिक ऊंचाई और।

उफ !

कितनी कठिन चढ़ाई है !

अरे अभी और !

अन्त में हिरनी पर्वत के शिखर पर चढ़ गई। आनन्द से उसका हृदय उमंगने लगा। वह ऊपर चढ़ आई थी।

हिरनों में इस मार्ग से आज तक कौन पर्वत पर चढ़ा था !

कोई नहीं !

वही अकेली। वही अकेली ऐसा कर सकी थी। अब जब वह लौटकर जाएगी तब सबसे कहेगी कि···

किन्तु उसका मन कुछ उदास हो गया।

किससे कहेगी वह ?

पुत्र क्या बचा होगा ?

वह कांप उठी।

और पति !!

वह अधिक नहीं सोच सकी। सोचना उसके सुख में घातक था। चांदनी की छिटकन उसके मन को हरने लगी।

पर्वत के इस शिखर पर भांति-भांति के रंगीन दीप्त पत्थर थे। हिरनी ने देखा तो देखती ही रह गई। सुन्दर झरने झर रहे थे। हिरनी ने झुककर पानी पिया, और तब कहा, 'निर्झर ! तेरा पानी कितना ठण्डा है !'

निर्झर ने कलकल करते हुए कहा, 'अभागिन ! तूने मेरा पानी आज तक यहां से पिया ही कब था। तू तो तब पीती थी जब वह नीचे गिरते-गिरते गर्म हो जाता था।'

चांदनी में निर्झर बिल्लौर और पारे की तरह चमक रहा था। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। मृगी ने सोचा कि जब हम नहीं देखते तो इतनी सुन्दरता, इतनी हरियाली यहां क्यों है ? वह इसका उत्तर नहीं सोच सकी। केवल निर्निमेष दृष्टि से देखती रही। उसे लगा, जैसे निर्झर कुछ गा रहा था। वह उसकी तान बड़ी देर तक सुनती रही।

पास में एक अत्यन्त सुन्दर हरा-भरा वृक्ष खड़ा था। उसमें अनेक अति सुगन्धित बड़े-बड़े फूल थे।

हिरनी उसके नीचे चली गई और उसके फूलों से टपकता रस उसने पिया तो लगा कि उसके रोम-रोम में एक नई शक्ति आ गई थी।

पृथ्वी पर कैसे-कैसे पदार्थ हैं, उसने सोचा, जिनसे प्राणों का पालन होता है।

उसने वृक्ष से कहा, 'अमृतझर ! तू बड़ा सुन्दर है। क्या मेरे न होने पर भी तू व्यर्थ अपना रस टपकाता रहता है ?'

वृक्ष ने कहा, 'अरी पगली। मैं अमृतझर नहीं हूं।'

'फिर इतनी मिठास !' मृगी ने आश्चर्य से पूछा।

'यह तो कुछ नहीं है', वृक्ष ने उत्तर दिया और फिर कहा, 'मिठास के वृक्ष तो इस चोटी के ऊपर हैं। तू गई नहीं इसपर ?'

मृगी ने कहा, 'अब शिखर कहां रह गया।'

'यह देख तेरे पीछे ही तो है !' वृक्ष ने हंसकर कहा।

ऊंचा शिखर देखकर मृगी ने कहा, 'यह क्या ! अभी ऊंचाई और भी

बाकी है ? तो क्या मैं पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर अभी तक नहीं चढ़ पाई ? यदि ऐसा है तो मेरा गर्व व्यर्थ है ? अभी मुझे और चढ़ना है।'

अजेय खड़ा रहा पर्वत।

सीधी चिकनी बहुत ऊंची बरगद-सी चट्टान।

इसपर कैसे चढ़े वह !

'बोल री ऊंचाई, तू कहां तक है !!' मृगी पुकार उठी।

तब ऊंचाई से प्रतिध्वनि आई, 'तू कहां तक है।'

तब सब गूंजने लगा, 'तू कहां तक है ?'

दूर बरगद ने सुना और पूछा, 'रूप से रूप ही पूछता है कि मैं कहां तक हूं।'

तृष्णा ऊर्ज्जस्वित हो उठी थी। मृगी का मन विक्षुब्ध हो रहा था। यह कौन बोला !! किन्तु किसीने उत्तर नहीं दिया।

यह कैसी चढ़ान है जिसके आगे उत्तर भी नहीं मिलता। इतनी चढ़ाई के बाद भी तो मन नहीं भर पाया।

पीछे जाना कायरता है। अब क्या करूं ?

उसने वृक्ष से कहा, 'दुर्विनीत, तूने मुझे यह बताकर मेरा सपना क्यों तोड़ दिया ?'

वृक्ष ने कहा, 'मुझे तेरी शक्ति का क्या पता था। लौट जा अब भी। कायर हैं वे जो लौटते हैं। और तू कायर है। जा, चली जा !'

'ओ मूर्ख !' मृगी ने कहा, 'मैं जंगम हूं। गति मेरी सत्ता है। तेरी तरह मैं स्थावर नहीं। समझा ? मैं जाऊंगी, जिधर मन करेगा चलूंगी।'

तभी मरु ने पुकारा, 'आओ ! आओ !'

आवाज़ बहुत दूर से आ रही थी मानो उसको किसीने क्षितिज से बुलाया था।

अब हिरनी का ध्यान उधर गया। अभी तक वह इतने विशाल प्रसार को देख नहीं पाई थी।

देखती की देखती रह गई।

चांदनी में रेगिस्तान अत्यन्त ही सुहावना दिखाई दे रहा था। तरह-तरह के रंग प्रतिच्छायित हो रहे थे। बालुका जैसे चांदी, सोने की तहों

में मरकत, मोती और न जाने कितने प्रकार के रत्नों के-से रंग लिए प्रशान्त स्वप्निल-सी दीख रही थी। उस शोभा को देखकर मृगी का मन हाथ से जाता रहा। यह कितना सुन्दर लोक है! इस ओर आने ही से मृग ने रोका था!

वह बढ़ी कि छोटी घास ने सूखी चट्टान पर से कहा, 'मृगी! कहां जा रही है?'

मृगी ने कहा, 'तू कौन है?'

'देख, मैं कितनी नीरस कठोर चट्टान पर उगी हूं। मैं हूं जीवन की जीत। तू भी जीवन है। जीवन से जीवन को प्रीत है। उधर न जा। उधर मरुभूमि है। मैं अपने को समझती हूं अपराजिता, फिर भी मुझे अपने ऊपर इतना घमण्ड नहीं, जितना तुझे है।'

हिरनी ने सुना और कहा, 'स्थावर की बेटी! जंगम से होड़ मत कर।'

घास ने फिर कहा, 'तू नहीं जानती नादान कि जीवन का नाम रस है और रसहीन भूमि में प्राण जीवित नहीं रह सकता। जीवन उस संघटन का नाम है जिसमें मात्रात्मक और गुणात्मक संकलन अपने आप आकर एकत्र हो जाए।'

तभी फिर पुकार आई, 'आओ! आओ!'

अब की बार की प्रतिध्वनि पहले से भी अधिक सुरीली थी। वह दूर तक फिर गूंजती चली गई।

हिरनी ने सुना तो लगा, रोम-रोम आह्वान में लहरों से बन चुके थे। प्रतिध्वनि के डूबने पर वह उतरने लगी।

जिन्होंने चढ़ाई का कष्ट जाना है, वे उतरने का सुख भी जानते हैं। आकाश अपनी ओर आने से रोकता है, धरती स्वयं ही अपनी ओर खींचती है।

उमंग से मन अब गमकने लगा। नीचे जाने वाले को सदैव शरीर-सुख मिलता है और तब तर्कबुद्धि कहती है—चला चल। नीचे चला चल। इतने नीचे कि अतल तक पहुंच जाए।

वह बढ़ चली।

पर्वत के नीचे उतरकर मुड़कर उसने देखा।

अरे, वह इतना उतर आई थी ! इतनी चढ़ान ! अब क्या उसे फिर यही सब चढ़ना होगा ? जीवन का हर उतार यदि पलटकर देखा जाए तो कितनी बड़ी चढ़ाई-सा दिखाई देता है। किन्तु अब वह जाकर भी क्या करेगी। वह तो अब नई भूमि में आ गई है।

चन्दा डूब गया।

हिरनी ने देखा, धीरे-धीरे प्रकाश तिरोहित होने लगा। जो भूमि चमक रही थी, उसपर एक धुन्ध-सी छाने लगी और फिर कुछ भी दिखाई देना बन्द हो गया।

अंधेरा छा गया। चारों ओर जैसे स्याही-सी पुत गई।

उसे भय लगने लगा। एक शीतलता चारों ओर हवा पर सनसना रही थी, किन्तु झोंकों में एक खुश्की थी जो अपनी अलग ही गन्ध के कारण गले में अटकती हुई लगी। हिरनी ने गला साफ किया। फिर चारों ओर देखा।

वह खड़ी-खड़ी देखती रही।

कोई नहीं। एकान्त ने उसके भय को बढ़ा दिया। प्राणी को अपने प्रतिरूप के अभाव में सब कुछ अभावजन्य और अभावयुक्त-सा ही प्रतीत होता है।

किन्तु शीघ्र ही पौ फटने लगी।

आकाश में एक रेखा खींची, काले पर सुनहली और फिर अरुणिम छाया पर्वत के पीछे से उमड़ने लगी, रोली-सी लाल, जो आक्षितिज बिखरती चली गई और तब बालू लाल-लाल-सी ऐसी दिखाई पड़ी जैसे किसीने मखमल की गदीली चादरें बिछा दी हों।

उस शोभा को देखकर हिरनी का भय दूर हो गया।

उसने चाहा कि अपने उल्लास को किसीपर प्रकट कर सके। इसलिए उसने सब ओर देखा।

किन्तु वहां चेतन नहीं था।

झुंझलाहट हुई।

तो क्या मैं हार गई ?

उसने स्वयं ही कहा और कोई उत्तर न पाकर वह अपने आप बोली, 'क्या मैं पहले से बुरी हूं ? कितनी सुन्दर है यह भूमि ! वहीं पड़ी रहती

तो मैं जीवन में क्या देख पाती। जीवन तो नित्य नवदर्शन है। जीवन उसी अनुभूति का नाम है जिसमें लघु का विराट रूप निरन्तर समाता चला जाता है। यदि यह सत्य है, तब तो मैं पहले से अब कहीं अच्छी हूं।'

उसने फिर कहा, 'मुझे आगे चलना चाहिए।'

रेत पर सुनहली छाया आ गई थी। परन्तु प्रातःकाल की यह छाया रात की स्वप्निल छाया से काफी भिन्न थी।

हिरनी चल पड़ी। उसके पांव बालू पर धंस-धंस जाते थे, फिर भी उसने चिन्ता नहीं की।

वह बढ़ती चली गई।

पीछे मुड़कर देखा। पर्वत काफी दूर हो गया था। अब पता चला कि वह जिस मैदान में थी उसका दूसरा छोर कहीं दिखाई ही नहीं पड़ता था।

रेत अब फैली हुई लगती थी। चारों ओर रेत।

पीलेपन को एक सफेदी घेरती हुई रेत का रंग भी बदले दे रही थी।

उसे प्यास-सी लगने लगी। गले में खराश-सी आ गई थी।

वह पानी की खोज में इधर-उधर आंखें घुमाने लगी।

किन्तु पानी कहां?

कहीं तो होगा?

वह ढूंढने लगी।

ऊपर अवश्य होगा।

वहां भी जाकर देखा। केवल बालू थी।

चिन्ता ने घेरना प्रारम्भ किया।

पानी चाहिए! पानी चाहिए!! देह की सत्ता ने सावधान किया।

उद्वेग से हिरनी विचलित हो उठी।

मैं धरती फाड़कर जल निकाल लूंगी! उसने मन ही मन उठते अहंकार से कहा, मैंने पर्वत पार किया है। मेरे चरणों से पाषाणों का वह विराट ढेर रुंदा पड़ा है। देख, मैं कितनी छोटी हूं, और मृत्युंजयी का गर्व लिए मैं इतना पथ चलकर आई हूं। क्या यहां मुझे पानी नहीं मिलेगा?

मृगी चारों ओर चलने लगी, और प्यास उसके भीतर बढ़ती जा रही थी।

किन्तु जल कहां था ! चारों ओर बालुका की अथाह राशि ही जमा थी। तह पर तह पड़ी थी।

वह हताश होने लगी। धूप में कहीं छाया भी दिखाई नहीं देती थी। वह कहां जाए !

तब उसे घबराहट ने घेरना प्रारम्भ किया और ज्यों-ज्यों प्यास बढ़ती चली गई उसे उनकी याद आने लगी।

कितना सुन्दर था वह कान्तार ! वह उसे छोड़कर क्यों चली आई ? हत्यारी ! तूने अपने बच्चे को मृत्यु के मुख में डाल दिया। तूने पति को संकट में छोड़ दिया ! जाति से विश्वासघात किया। किसलिए ? इसी बालू में तड़पने के लिए ?

और स्मृतियां तब बहुत करुण हो-होकर जागने लगीं।

वह प्रपात कितना प्यारा था ! उसमें से ढेर-ढेर फेन उठते थे जो किनारे की हरियालियों पर मोतियों-से सीकर बनकर छा जाते थे।

वह निर्झर कितना प्यारा था जो स्वच्छ पत्थरों पर होकर आम्र-वृक्ष के पास झरता था। वहां एक बगुला दिन में सोया करता था और सन्ध्या-वेला में सरोवर के किनारे ध्यानमग्न-सा एक टांग पर जा खड़ा होता था।

कैसी कल्लोल करते थे हम सब चांदनी रातों में। थक जाते थे, देखते-देखते, लहरों की चुलबुल में चांदियों की रस्सियों को खुलते-बंधते बिखर जाते और फिर बच्चे किलकते थे।

और तब वर्षा होती थी। ढेर-ढेर पानी बरसता था। बूंदें कभी मोतियों सी झरती थीं, कभी वृक्षों को श्वेत-सा कर देती थीं। उस समय पृथ्वी से आकाश तक सब कैसा भीग जाता था। चारों ओर तरलता, तरलता······ भीगापन······भीगापन······ही छा जाता था······केवल पानी······ पानी······

धूप चढ़ने लगी।

पानी······

पानी······

कहां है पानी······

दृष्टि जिधर जाती उधर आंखों को चौंधिया देती। बालू अब तलवार की धार-सी चमकने लगी। आंखों की पुतली पर जैसे वह सीधा वार कर रही थी।

मरु अब तप्त होने लगा। धूप के चढ़ने के साथ बालू गर्म होती जा रही थी। कहीं-कहीं ऐसा लगता जैसे कोई आर्त पशु उल्टी सांसें खींच रहा हो। मृगी ने चौंककर देखा। कुछ नहीं। बालू कभी झरती थी, कभी हवा के थपेड़ों से खिसकती थी और यह उसीका शब्द था।

गर्मी से उस समय मृगी की देह झुलसने लगी। हवा से उड़ती बालू जब देह पर टकराती तब लगता अंगारे उसपर झर रहे हों।

मृगी तड़पन से भर गई।

उसने पुकारा, 'मरुभूमि ! यह मत कर ! मैं जल रही हूं।'

मरुभूमि ने कहा, 'मेरा कार्य मेरा नियमन है। तू यहां क्यों है ?'

'मैं यहां सुख लेने आई थी।'

'मेरा सुख यही है।' कहकर वह बालू हंसने लगी।

भीषण मरुस्थल ने सूर्य को अपने मुख में भर लिया। उसकी एक डाढ़ धरती पर थी, और एक डाढ़ आकाश में।

उस दाह से मृगी को लगा वह पक रही थी।

'क्या मैं पक रही हूं ?' वह चिल्लाई।

गम्भीर स्वर से पवन ने कहा, 'तू भी, मैं भी, मरु भी, आकाश भी, धरती भी······'

वह भटकने लगी।

उसने पुकारा, 'मुझे पानी दो······'

किसीने भी उत्तर नहीं दिया। तब ज्वलन्त नेत्र-सा धधकता सूर्य बोला, 'मरुस्थल ! मुझे हवा कर !'

'प्रभु !' मरुस्थल चिल्लाया।

तब बालू ढेर-ढेर होकर चारों ओर छितराने लगी। मृगी का प्यास से गला चटक ही रहा था, उस समय वह दिग्भ्रमित-सी इधर-उधर चक्कर

काटने लगी।

रात यहीं कितनी सुखी ठण्ड थी। यह भी क्या कोई सत्य हो सकता है कि वहीं इस समय प्रलय की ज्वाला-सी धधक रही है।

किन्तु मृगी सोच नहीं पाई। अब उसे लगा कि भागना ही उचित है। किन्तु वह जिधर जाती उधर ही उसे अनन्त बालुका दिखाई देता, जलती, दहकती हुई······

भटकते-भटकते वह हांफ उठी !

अब वह कहां जाए ! धरती पर पांव नहीं रखा जाता। सारा प्रदेश भांय-भांय कर रहा था।

भय से उसका अन्तर्तम अब बार-बार दहल उठा। उसको लगा कहीं भी रक्षा का मार्ग नहीं था।

तभी कोई अट्टहास कर उठा। यह भीषण स्वर एक प्रचण्ड घोष उठाता हुआ दिगन्तों में मंडरा उठा।

हाऽहाऽहाऽहा······

हाऽहाऽहाऽहा······

विस्फुरित वह्नि की लपट-सा दह्यमान पवन उसे बहाने लगा। विक-राल था वह स्वर।

यह कौन बोला !!

मृगी चिल्ला उठी।

'हम ! इधर आ ! इधर हमें देख !'

पुकार आर्तनाद-सी सुनाई दी। मृगी आगे बढ़ आई। उसने देखा।

देखा और आंखें फटी रह गईं।

यह क्या ? यह कैसा खजाना पड़ा था सामने ! असंख्य रत्न ! रत्नों के ढेर !

पास से देखा। रत्न नहीं ! यह तो कुछ और चिलचिला रहा था ! अरे ! यह तो हड्डियों के ढेर पड़े थे।

धूप में चमकती हड्डियां सूख-सूखकर बालू से घिस-घिसकर चिकनी हो गई थीं।

तब बालू में से आवाज़ उठने लगी :

'महत्वाकांक्षा की तृष्णा से व्याकुल हृदय देख ! अपनी उस गति का अंत देख, जिसे तूने उन्नति समझा है। यह देख ! कौन है यह कंकाल ! पहचान इसे। यह वह है जिसे लोक में सब भयभीत होकर सम्राट् कहा करते थे। इसके वैभव को पूरा करने के लिए समुद्र अपने रत्न उठाकर गर्भ को खाली कर-करके किनारे पर फेंक देता था। इसकी सेना जब चलती थी तब लाखों लाशें आतंक से इसकी जय बोला करती थीं। इसके गर्व का कहीं भी अन्त नहीं था।

'और यह किसका कंकाल है देख! यह है वह भीमाकार दुर्दमनीय योद्धा, जिसकी हुंकारों को सुनकर आकाश में तुमुल गर्जन करने वाले मेघ भी चुप हो जाते थे। लरजते वज्रों का-सा भय इसकी भुजाओं में पलता था। और अब इसके सिर में बालू भर गई है।

'और यह है कंकाल उस महाकवि का, जिसके गीतों को सुनकर फसलें झूमती थीं। सरस्वती इसके शब्दों के पांव धोती थी। ममता और स्नेह की अगाध हिलोरें इसके स्वरों से भादों की झरन की तरह गिरती थीं। भोर और सांझ के मनोरम स्वप्न इसके सुकोमल गीतों में कलरव किया करते थे।

'और यह सुन्दरी वह है जिसके लावण्य को देखकर दिशाएं चमत्कृत होती थीं। इसके एक कटाक्ष में राज्यों में विप्लव होते थे और उंगली हिलाने पर उस वज्रनाद पर भीषण शंखों के गर्जन उठकर प्रलयों को निस्तब्ध कर देते थे। इसके स्नान के लिए त्रिभुवन की श्री भी तरल बनकर बहती थी। किन्तु यहां···देख···ये सब, सब मरे पड़े हैं ! आज सब मरे पड़े हैं। देख ! इन्हें देख ! !'

और तब फिर वही भयानक अट्टहास उठा। उसे सुनकर पवन सहस्र चरण होकर कंकालों को रौंदने लगा और तुमुल रव से धरती हिलने लगी।

मृगी के रोंगटे खड़े हो गए।

उसके गले में कांटे उछल आए थे। जीभ तालू से लगती थी तो लगता था, सब छिला जाता है। उसने देखा बालू के स्तम्भ-से उठ-उठकर चक्कर काट रहे थे।

आतंक से उसने देखा कि वे सब जिह्वाओं की तरह लपलपाने लगे और फिर उसने देखा कि वह सब मिल गए और उसकी ओर एक विकराल

विशाल दैत्याकार जिह्वा बढ़ने लगी। हिरनी भागी। उसने दूर से मुड़कर देखा कि एक टीला उसकी आंखों के सामने उड़ा चला जा रहा था और पवन एक विराट दानव की भांति उसे भीम वेग से लिए भाग रहा था। और चारों ओर से ध्वनि उठती थी, 'जय महाकाल की अंशकला···जय महाकाल की अंशकला···'

हिरनी ने देखा तो वह हतबुद्धि-सी रह गई। उस समय गर्जन उठने लगा। उसे लगा, वह शिथिल हो गई थी। तब पर्वताकार दांतों की तरह बालू के टीले धूप में सफेद और लाल-लाल-से चमकने लगे जैसे कोई विशाल मुख था जिसमें रक्त और हड्डियां दीख रही थीं। और कभी-कभी उड़ती बालू ऐसी लगती थी जैसे आग की लूकें टूट रही हों।

बालू में कंकाल-अस्थियां सब ढंक गए और केवल फुत्कार-सा सुनाई देता रहा। तूफान आया था जिससे हिरनी बाल-बाल बच निकली थी।

जीवन और मृत्यु का वह संघर्ष उसके जोड़-जोड़ को हिला गया। दूर तक सूंसां, सूंसां अभी तक सुनाई दे रही थी, जैसे अब दानव कहीं हांफ रहा था।

मृगी का गला अब तड़कने लगा।

वह चिल्लाई, 'मुझे पानी दो···महाकाल मुझे पानी दो···।'

उसने फिर पुकारा, 'महाकाल! तुम मृत्यु हो! मैं जीवन हूं···मैं जीवन की तृष्णा हूं···आज मैं तुम्हारे अंक में हूं···मुझे भीख दो······।'

किन्तु अब मरु चुप हो गया था।

और उसने सिर उठाया। देखा।

विश्वास नहीं हुआ।

यह वह क्या देख रही है?

इतनी उमंग से बढ़ा आ रहा है!!

वह क्या कम है!!

पानी!!

जीवन!!

महाकाल ने सुन लिया! जय हो तुम्हारी दयालु! तुमने तो मेरे लिए असंख्य लहरें भेज दीं! मैंने तो चुल्लू भर मांगा था, तुमने तो समुद्र को ही

उमड़ा दिया। महाकाल ! तुम ही त्रैलोक्य के पालनकर्ता हो। मृत्यु भी जीवन का सम्मान करती है !

उत्तेजना से शरीर कांपने लगा।

चारों ओर अंधेरा-सा छाने लगा।

'ठहर जा रे अंधकार !' मृगी ने पुकारा, 'वह पानी मेरा है। मुझे तू नहीं रोक सकता !'

'यह कैसी गर्जना छा रही है ! !' उसने देखा।

फिर आंधी-सी आ रही थी। वह फिर भागने लगी और तब मरु ने फूत्कार मारकर कहा, 'कहां जाएगी जीवन की तृष्णा! अब कहां जाएगी !'

'धूल और रेत देखने नहीं देती,' मृगी ने कहा।

'देखेगी क्या ?'

'पानी ! मेरे जीवन का आधार पानी !'

मरु ने हंसकर कहा, 'वह देख अपनी ही तृष्णा की छाया ! वह रहा पानी !'

'पानी !' मृगी पुकार उठी, 'पानी मेरा है।'

मरु व्यंग्य से हंसा और बोला, 'सच ! प्राणी में भेद नहीं। ऐसे ही सम्राट् तड़पा था, ऐसे ही मृगी तड़प रही है।'

वह चिल्लाई, 'वह रहीं लहरें !'

'उमड़ी आ रही हैं !' वह फिर चिल्लाई।

पवन ने कहा, 'दौड़! भागकर पी ले न, रुकी क्यों है ?'

और तब वह भाग चली।

पानी मेरा है······

सामने लहरा रहा है······

अभी और आगे है······

वह रहा, वह रहा······

अरे, यहां भी नहीं है······

तू रुक मत···और आगे चल···वह हिल रहा है······

बस, अब आ गया···नील घटा-सा···कैसा मदमाता-सा हिल रहा है थपेड़े मारकर······

पानी अभी उतनी ही दूर था !

मुड़कर देखा।

देखा तो भूल का अनुभव हुआ।

पानी तो वहीं था ! जहां से भागी आ रही उसके तनिक ही पीछे तो था ! उतनी-सी दूर छोड़कर इतना व्यर्थ भागकर क्यों आई ?

वहीं चल !

वह फिर भागने लगी। परन्तु पानी तो उतनी ही दूर था। उधर क्यों जा रही है वह ?

फिर मुड़कर देखा !

'अरे, उधर भी जल है······

इधर भी है······

नहीं, नहीं, उधर है······

मृगी ने घूमकर देखा······

चारों ओर देखा। हर तरफ लहरें हिलोरें लिए कांप रही थीं।

सर्वत्र है यह जल। फिर भी कितनी दूर है।

मृगी उसे पास ले आएगी। वह दूर नहीं रहेगा। यह तो एकदम पास की दूरी है जो अपनी छलना से उसे सता रही है। उसे रुकना नहीं चाहिए।

वह भागने लगी। भागने लगी। उसकी जीभ लटकने लगी···ऐसी खिंच आई वह···और आगे है पानी···वह रहा···नीला जल···यह अनन्त प्रधावन था···मृगी भागी चली जा रही थी···

और तब पवन ने मुस्कराकर कहा, 'अपराजित जीवन ! तेरी यह आशा तो मरु का निर्मम हाहाकार भी नहीं रोक सका।'

यह सुनकर मरु ने कठोरता से कहा, 'दास ! तेरे सारे सीकर तो मैंने ही प्रतिशोध से सुखा डाले, फिर भी तू उसीकी प्रशंसा करता है ! ले···

और वह धूल को ऊपर उड़ाने लगा। अब झुलसती बालू से मृगी की त्वचा जलने लगी।

मृगी शिथिल हो चली।

किन्तु पानी अभी भी सामने झिलमिला रहा था। उसकी आंखें धुंधली हो चली थीं। केवल लहरें दीख रही थीं और कुछ नहीं···

और वह लड़खड़ाने लगी थी, किन्तु ऐसा लगता था, जैसे पास ही है, पास ही है···और तब भागते-भागते अन्त में मृगी आंखें मूंदकर नीचे गिर गई···किन्तु अब भी थोड़ी ही दूर पर पानी लहरा रहा था। उसने चाहा कि जीभ लम्बी करके उसे चाट ले और अपनी प्यास बुझा ले···और फिर उस पास की दूरी को अपने में समेट कर एक कर दे···

दिन ढल चला था। अजगर की फुंकार जैसे शान्त हो रही थी। और वह गर्मी का विषधर किसी गुहा में घुसता चला जा रहा था। निष्प्रभ सूर्य धीरे-धीरे पर्वत के पार जाकर छिप गया।

सारे लोक चल रहे थे। विराट् परिभ्रमण निरन्तर चलता जा रहा था। किन्तु अब मृगी पड़ी थी।

उसने स्वप्न देखा :

वह सघन वन में रोमन्थन कर रही है। शावक खेल रहा है। हिरन आता है। दोनों एक दूसरे को मुग्ध आंखों से देखते हैं। वह कहता है, 'प्रिये! आज महोत्सव है।'

'क्यों प्रिय!'

'आज वन में मृगों ने एक नई चरागाह पाई है जिसमें घास बहुत ही कोमल है।'

वे सब उसी शाद्वल में घूम रहे हैं।

चन्दा उग आया है।

वह गाने लगी है :

ओ जीवन की सुन्दरता तू चली न जा।
तू तो हमारे पास शाश्वत बनकर रह।

कोलाहल और संघर्ष, यदि तेरे प्रतिक्षण नवीन और मनोहरतम होने का नाम है, तो हमें स्वीकार है। तू रह और हममें सदैव अपनी अनुभूति को जगा क्योंकि तेरे अतिरिक्त हमारे लिए और कुछ भी नहीं है।

ओ रहस्य के मुखरूप हम तेरा वरण करते हैं।
ओ जीवन की सुन्दरता धरती की वन्दना कर।

गीत थम गया और फिर सदा के लिए मृगी भी सम्राटों के बीच सो गई।